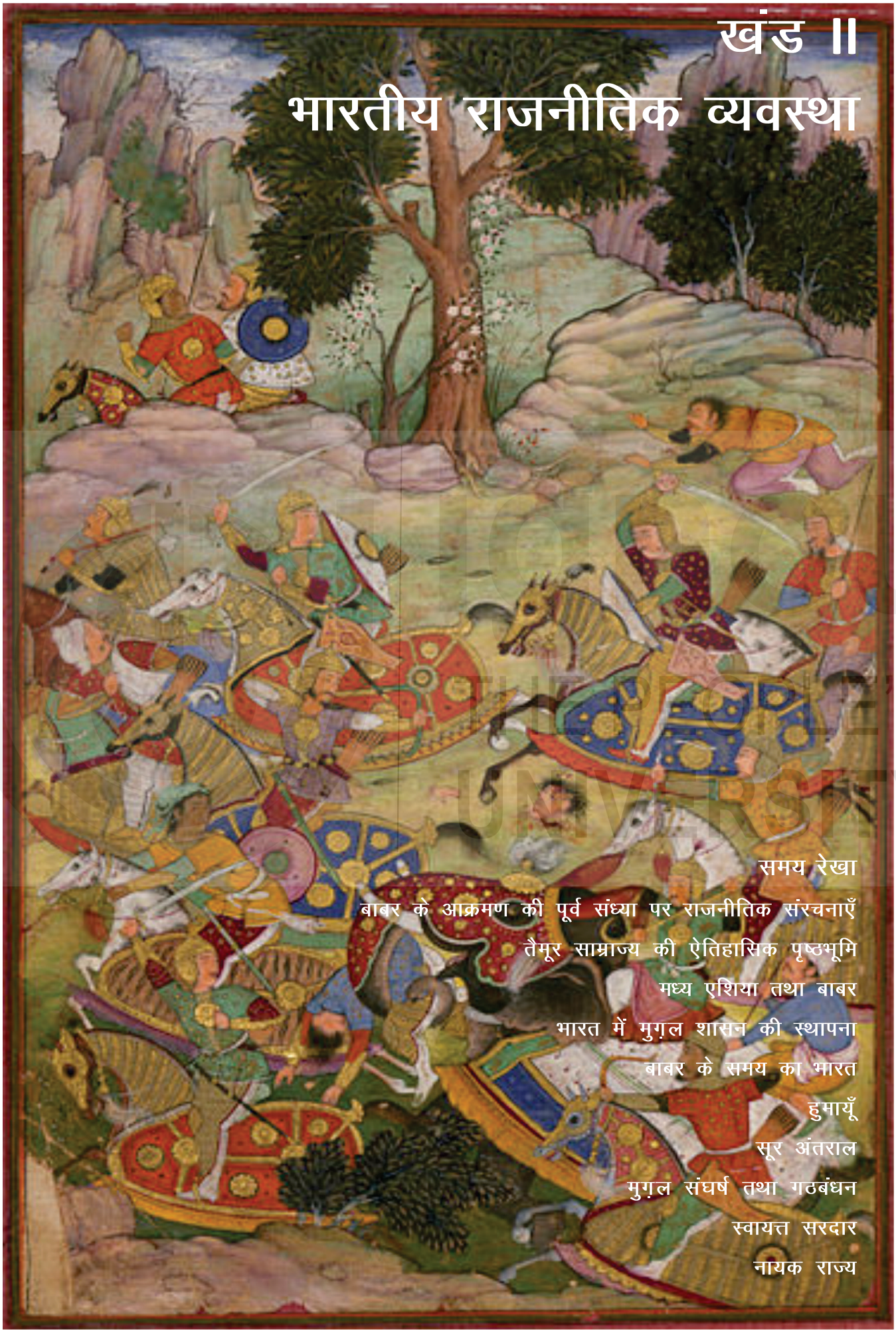
खंड II

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था



समय रेखा

बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनीतिक संरचनाएँ

तैमूर साम्राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मध्य एशिया तथा बाबर

भारत में मुग़ल शासन की स्थापना

बाबर के समय का भारत

हुमायूँ

सूर अंतराल

मुग़ल संघर्ष तथा गठबंधन

स्वायत्त सरदार

नायक राज्य

पानीपत का युद्ध, 1526, *बाबरनामा* का एक पृष्ठ; 16वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

फोटोग्राफ स्रोत : http://art.thewalters.org/detail/14445/the-battle-of-panipat/
http://www.oldindianarts.in/2011/10/illustrationsÑfrom-manuscriptof.html

स्रोत : https://commons.wikimedia.org/wiki/File: The_ battle_ of_ Panipat_ and_ the_ death_ of_ Sultan_ Ibr% C4% 81h% C4%ABm,_the_last_of_the_L%C5%8Dd%C4%AB_Sultans_of_Delhi.jpg

इकाई 3 क्षेत्रीय तथा स्थानीय राजव्यवस्थाएँ*

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनीतिक व्यवस्थाएँ

3.2.1 दिल्ली तथा आगरा के आसपास की रियासतें

3.2.2 पश्चिमोत्तर भारत

3.2.3 पश्चिमी तथा मध्य भारत

3.2.4 पूर्वी भारत

3.2.5 दक्खन और दक्षिण भारत

3.3 बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या की राजनीतिक व्यवस्था पर रशब्रुक विलियम्स के विचार

3.4 रशब्रुक विलियम्स की अवधारणा की समीक्षा

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों का उत्तर

3.8 संदर्भ ग्रंथ

3.9 शैक्षणिक वीडियो

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनीतिक व्यवस्थाओं के विषय में जान पाएँगे,
- बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनीतिक व्यवस्थाओं के संबंध में रशब्रुक विलियम्स के विश्लेषण का परीक्षण कर पाएँगे, और
- बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनीतिक व्यवस्थाओं की रशब्रुक विलियम्स की समझ का आकलन और मूल्यांकन कर पाएँगे।

3.1 प्रस्तावना

हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-107** में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि तुग़लक सत्ता के पतन के साथ ही सल्तनत में विखंडन के चिह्न प्रदर्शित होना शुरू हो गए थे। 1398 में तैमूर के हमले ने सल्तनत की कमजोरी को उजागर कर दिया था। इनके उत्तराधिकारी सैय्यद (1414-1451) तथा लोदी (1451-1526) शासकों में इतनी सूझ-बूझ नहीं थी कि वह विघटनकारी शक्तियों को नियंत्रण में रख पाते। विद्रोहों तथा उपद्रवों ने सल्तनत को आक्रांत कर रखा था। दौलत ख़ान लोदी ने पंजाब में विद्रोह किया और बाबर को हिंदुस्तान में आक्रमण के लिए आमंत्रित भी किया। अलाउद्दीन ख़ान लोदी तथा फ़रमूली *उमरा* भी इब्राहिम के विरुद्ध हो गए थे। अनन्य अफ़ग़ान शक्ति केंद्रों के उदय में योगदान देने वाला एक कारक संभवतः अफ़ग़ान राजव्यवस्था में ही अंतर्निहित था जिसे अब्बास ख़ान सरवानी

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

स्पष्टतः रेखांकित करता है, 'ईश्वर की कृपा से दिल्ली सल्तनत अफ़ग़ानों को प्राप्त हुआ ... जो कुछ भी जीता जाएगा उसे हमारे साथ आपस में बांटा जाएगा'। 'समानों में प्रथम' के इस विचार में, सिकंदर लोदी के केंद्रीकरण के प्रयासों के बावजूद शायद ही अफ़ग़ान राजव्यवस्था की इस अंतर्निहित प्रकृति में कोई परिवर्तन आ पाया था। ये प्रमुख अफ़ग़ान *उमरा* सुल्तान की आज्ञा के बिना ही अपने से ही नई *जागीरों* और *ज़मींदारियों* को सृजित करने के लिए स्वतंत्र थे। इस प्रकार व्यवहारतः, प्रत्येक प्रमुख अफ़ग़ान अमीर अपने अधिकार-क्षेत्र में एक स्वतंत्र स्वामी की भाँति कार्यरत था। समानता के इस विचार के प्रचलन के बावजूद, 'विशेषाधिकार युक्त होने' और 'कृपापात्र होने' का विचार भी प्रबल था, अफ़ग़ानों के मध्य कृपापात्र कबीले लोदी, सरवानी, लोहानी और फ़रमूली (ग़ज़नी के शेख़ज़ादा) थे; जबकि सूर तथा कक्कर/घक्कर जैसी जनजातियों को पूरी तरह उपेक्षित रखा गया था, यहाँ तक कि नियाज़ियों को भी हेय दृष्टि से देखा जाता था। लेकिन, अफ़ग़ान *उमरा* के वर्चस्व के बावजूद लोदियों ने ग़ैर-अफ़ग़ान मूल के तत्वों को भी समान रूप से स्थान दिया था, विशेषकर ग़ैर-मुस्लिमों तथा राजपूतों को।

हम अपने पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-107** में पहले ही 15वीं शताब्दी में नवीन क्षेत्रीय राज्यों के उदय के विषय में चर्चा कर चुके हैं। यहाँ, हमारा उद्देश्य सोलहवीं शताब्दी में बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर अस्तित्व में रहे क्षेत्रीय राज्यों/स्थानीय शक्ति समूहों के आपसी हितों पर दृष्टि डालना है। इसके अतिरिक्त, हम बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर उपमहाद्वीप में राजनीतिक व्यवस्थाओं पर रशब्रुक विलियम्स के विश्लेशण पर भी पुनर्विचार करेंगे।

3.2 बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर राजनीतिक व्यवस्था

बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर भारतीय राजव्यवस्था पूर्णतः विश्रृंखलित थी। ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, 'सोलहवीं शताब्दी की शुरुआत में भारत कई राज्यों का समुच्चय था और ऐसे किसी भी आक्रमणकारी के लिए आसान शिकार बन सकता था जिसके पास ताक़त और उसे जीतने की कोशिश करने इच्छा थी।'

3.2.1 दिल्ली तथा आगरा के आसपास की रियासतें

बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर दिल्ली तथा आगरा के आसपास लोदी सल्तनत से लगभग स्वतंत्र कई अफ़ग़ान सरदारियाँ अस्तित्व में थीं, जो न केवल ऐसी शक्तियाँ थीं जिनको अनदेखा नहीं किया जा सकता था, बल्कि ये किसी एक समूह के पक्ष में सत्ता के संतुलन को झुकाने में भी समर्थ थीं। *वाक़ियात-ए मुश्ताकी* इस विखंडित अफ़ग़ान राजव्यवस्था और कई शक्ति-केंद्रों की उपस्थिति का सचित्र वर्णन उपलब्ध कराती है:

> संपूर्ण देश का आधा *जागीरों* के रूप में फ़रमूलियों को प्रदान किया गया था और शेष आधा अन्य अफ़ग़ान कबीलों के पास था। इस समय लोहानियों और फ़रमूलियों का वर्चस्व कायम था। सारण और चंपारण के जिले मियाँ हुसैन के अधिकार में थे; अवध, अंबाला और होधना पर मियाँ मुहम्मद काला पहाड़ का अधिकार था; कन्नौज पर मियाँ गदाई; शम्साबाद, थानेसर और शाहाबाद पर मियाँ इमाद; मराहरा पर मियाँ के भाई तातार ख़ान का; और हरियाणा, देसुआ तथा अन्य बिखरे *परगनों* पर ख़्वाजगी शेख़ सैय्यद का अधिकार था।
>
> सरवानियों का मुखिया आज़म हुमायूँ था; वहीं लोदियों में चार प्रमुख सरदार थेः महमूद ख़ान, जिसके पास कालपी की *जागीर* थी; मियाँ आलम जिसको इटावा तथा चंदावा पर अधिकार प्राप्त था; मुबारक ख़ान जिसकी *जागीर* लखनऊ में थी; और दौलत ख़ान लोदी जिसके पास लाहौर था। साहू-खैलों में हुसैन ख़ान और ख़ान जहाँ प्रमुख थे, इन दोनों का और बहलोल लोदी का संबंध एक ही पूर्वज से था।
>
> कई *उमरा* के पास भारी-भरकम प्रतिष्ठान थे, कड़ा का *जागीरदार* आज़म हुमायूँ प्रतिवर्ष *कुरान* की 200 प्रतियाँ खरीदता था, उसकी कमान में 45,000 घोड़े और 700 हाथी थे, इससे कुछ कम दर्जे वाले दौलत ख़ान के पास 4000 घुड़सवार, अली ख़ान उशे के पास भी 4000 और फिरोज़ ख़ान सरवानी के पास 6000 घुड़सवार थे। अन्य

उमरा के बीच इसी तरह 25,000 और अतिरिक्त घोड़े नियंत्रण में थे। जुमाल (जमाल) ख़ान लोदी सारंग ख़ानी के पुत्र अहमद ख़ान को जब जौनपुर का हाकिम नियुक्त किया गया तो उसके पास भी 20,000 घुड़सवार थे।

सिकंदर लोदी की मृत्यु (1517) के बाद षड्यंत्रों का बोलबाला रहा। इन षड्यंत्रों का नेता एक प्रमुख अफ़ग़ान सरदार आज़म हुमायूँ सरवानी था। यह उल्लेख मिलता है कि आज़म हुमायूँ ने ही सिकंदर लोदी की मृत्यु के बाद अफ़ग़ान गुटों के बीच होने वाले झगड़ों के बीच शहजादा जलाल ख़ान (इब्राहिम लोदी के भाई) की ग्वालियर भागने में सहायता की थी, जिसके परिणामस्वरूप इब्राहिम लोदी ने आज़म हुमायूँ को बंदी बना लिया था। इब्राहिम के इस कृत्य ने स्थिति को और जटिल बना दिया। आज़म हुमायूँ सरवानी के पुत्र इस्लाम ख़ान ने इब्राहिम के खिलाफ़ विद्रोह का झंडा उठा लिया और आगरा पर कब्ज़ा कर लिया था। इब्राहिम की स्थिति और भी कमज़ोर हो गई जब उसके इस कृत्य की निंदा करते हुए अन्य शक्तिशाली अफ़ग़ान सरदारों, आज़म हुमायूँ लोदी (कड़ा का *मुक़्ता*) तथा सैय्यद ख़ान युसूफ़ ख़ैल लोदी (लखनऊ का *मुक्ता*) ने आज़म हुमायूँ सरवानी को आज़ाद करने की माँग की। यद्यपि, इब्राहिम ने सफलतापूर्वक इस्लाम ख़ान की योजना को निष्फल कर दिया और उसकी हत्या कर दी, इसी समय क़ैद में आज़म हुमायूँ सरवानी की भी मौत/हत्या हो गई। इस प्रकार, इब्राहिम की नीति ने प्रमुख अफ़ग़ान सरदारों को अपने पक्ष में लाने के बजाय, विद्रोहियों से निपटने में इब्राहिम की सख्ती ने अफ़ग़ान सरदारों के मध्य इब्राहिम के प्रति विद्वेष को और तीव्र कर दिया। इसने अफ़ग़ान सल्तनत को भारी क्षति पहुंचाई। शेख हुसैन (सारण और चंपारण का *मुक़्ता*) और मियाँ मारूफ़ फ़रमूली (अवध का *मुक़्ता*) ने भी इब्राहिम लोदी को छोड़ दिया और राजपूत पक्ष से जा मिले, जिसने इब्राहिम को लगभग राजपूतों के हाथों पराजय की कगार पर ला खड़ा किया। मियाँ भुआ, सिकंदर का सबसे अधिक सम्मानित और अनुभवी अमीर, जिसके साथ इब्राहिम अपने पिता की भाँति स्नेह साझा करता था, को भी नहीं बख्शा गया और निकाल दिया गया, प्रारंभ में उसके स्थान पर उसके पुत्र को स्थान दिया गया और अंत में उसे मौत के घाट उतार दिया गया। *वाक़ियात-ए मुश्ताकी* में दर्ज है कि इब्राहिम ने कई प्रमुख अमीरों को कैद में डाल दियाः आज़म हुमायूँ सरवानी के पुत्र फ़तेह ख़ान, तथा सैय्यद ख़ान लोदी और कबीर ख़ान लोदी को। वह उस पर यह दोष भी लगाता है कि इब्राहिम का इरादा दौलत ख़ान लोदी के पुत्र दिलावर ख़ान लोदी को क़ैद करने का भी था किंतु वह भाग निकला। *वाक़ियात-ए मुश्ताकी* में इब्राहिम पर प्रमुख सरदारों में मनमुटाव पैदा करने और उन्हें अपने से दूर करने का आरोप भी लगाया गया है। सैय्यद ख़ान लोदी, ख़ाने जहाँ लोदी, मियाँ हुसैन फ़रमूली तथा मियाँ मारूफ़ फ़रमूली अपने भविष्य के बारे में आशंकित हो गए थे और उन्होंने पूर्वी *विलायतों* में एकता क़ायम करते हुए स्वयं को संगठित किया और सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सुल्तान ने *मसनद-ए आली* दरिया ख़ान, जो *वज़ीर* के पद पर था, और बिहार में नियुक्त था, के प्रति शत्रुतापूर्ण रुख अपनाया। इब्राहिम के इस प्रकार के शत्रुतापूर्ण रवैये और पुराने प्रभावी अफ़ग़ान अमीरों से मित्रतापूर्ण संबंध न बना पाने ने प्रमुख अमीरों को उससे दूर कर दिया। उन्होंने या तो विद्रोह कर दिया या उन्होंने ज़रूरत के समय समर्थन वापस ले लिया और उसकी मुसीबतों को बढ़ाने के लिए वह उसके विरोधियों के साथ जाकर खड़े हो गए।

उनमें सबसे प्रमुख मेवात का अफ़ग़ान सरदार हसन ख़ान मेवाती था। बयाना पर शक्तिशाली अफ़ग़ान सरदार निज़ाम ख़ान का नियंत्रण था। आगरा के निकट स्थित ग्वालियर पर तातार ख़ान सारंग़ख़ानी का प्रभुत्व था। इसके दक्षिण में धौलपुर एक अन्य प्रमुख अफ़गान सरदार मुहम्मद ज़ैतून के नियंत्रण में था। इटावा स्वतन्त्र रूप से अफ़गान अमीर कुतब खान के आधिपत्य में था। रापरी पर लोहानी अफ़गान हुसैन खान का नियंत्रण था।

स्पष्टतः, न तो अफ़ग़ान सरदारों के बीच कोई उद्देश्य की एकता रह गई थी और न ही वे किसी एक व्यक्ति की कमान के प्रभुत्व को स्वीकारने को तैयार थे; इसके बजाय उनके निजी हित सर्वप्रमुख हो उठे थे।

3.2.2 पश्चिमोत्तर भारत

प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी में सिंध पर सम्मा राजवंश (1351-1520) का था। 1520 में सम्मा वंश को अरघुन शाह बेग द्वारा उखाड़ फेंका गया। उसका पुत्र शाह हुसैन एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था जिसके तत्वाधान में अरघुनों (1520-1591) की शक्ति का विस्तार हुआ।

बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर पंजाब प्रमुख अफ़ग़ान सरदार दौलत ख़ान लोदी, तातार ख़ान के पुत्र, के अधीन था। दौलत ख़ान लोदी, संभवतः जैसा कि त्रिपाठी कहते हैं, 'सिकंदर लोदी का सबसे कड़ा प्रतिद्वंद्वी' था। वह, इब्राहिम की गद्दी नशीनी के समय लाहौर से 'बेताब सुल्तान' की तरह बीस सालों से पंजाब क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व जमाए बैठा था। आगरा के तख्त के दावेदारों में से एक आलम ख़ान लोदी भी दौलत ख़ान लोदी का पक्षधर था। यद्यपि इब्राहिम लोदी, दौलत ख़ान लोदी की निष्ठा हासिल करना चाहता था किंतु वह उसके द्वारा राजधानी में स्वयं हाज़िर होकर सुल्तान के प्रति निष्ठा जताने के बजाय अपने पुत्र दिलावर ख़ान को भेजने से ख़फ़ा था। इब्राहिम ने इस तरह के व्यवहार के गहन परिणाम भुगतने की चेतावनी दी, यह संदेश दिलावर ने दरबार में अफ़ग़ान सरदारों में 'दमित असंतोष' की मौजूदगी की ख़बर के साथ लाहौर पहुँचा दिया। दौलत बाबर के आक्रामक हमलों का सामना करने वालों में प्रथम था। बाबर ने 1518-1519 में सिंध को पार कर भीरा पर दो बार हमला किया, जिस पर दौलत खाँ के पुत्र अली ख़ान का नियंत्रण था। बाबर ने इब्राहिम के पास, भीरा, खुशाब, चेनाब तथा चिनीउत का समर्पण करने की माँग करते हुए, एक राजदूत मुल्ला मुर्शिद को भेजा था, जिसे दौलत ख़ान ने रोक लिया और जिसे मुलाक़ात की अनुमति भी नहीं दी गई और उसे क़ैद कर लिया गया। यद्यपि दौलत ख़ान की दरबार के षड्यंत्रों में कोई दिलचस्पी नहीं थी पर वह पंजाब पर पूर्ण नियंत्रण रखने को लेकर सचेत था। अपने मन में इस ख़याल के साथ उसने बाबर को हिंदुस्तान में आक्रमण का न्योता दिया था। इन घटनाक्रमों ने बाबर को आश्वस्त कर दिया था कि 'अफ़ग़ानों के बीच किसी प्रकार का एका नहीं है तथा यह साहसिक क़दम उठाने के लिए उसके लिए उचित अवसर है' (त्रिपाठी, 1963: 28-29)। यह संदर्भ मिलता है कि उसके पुत्र दिलावर ख़ान लोदी ने काबुल में बाबर से भेंट की थी। इब्राहिम ने बीबन ख़ान और मुबारक ख़ान के अधीन लाहौर पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी थी। बिना किसी प्रतिरोध के इब्राहिम की फौजों द्वारा लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया गया और दौलत मुलतान जाकर बाबर से सहयोग पाने का इंतज़ार करने लगा। वहीं, बाबर को लाहौर पर कब्ज़ा करने में कोई मुश्किल नहीं हुई, यहाँ से उसने दीपालपुर की ओर हमला करते हुए उस पर भी कब्ज़ा (1524) कर लिया। यहाँ सम्मान प्रकट करने हेतु दौलत ख़ान बाबर के समक्ष पेश हुआ तथा बदले में उसे जालंधर और सुल्तानपुर की गवर्नरशिप प्रदान की गई। किंतु लाहौर को गंवा देना उसके लिए बड़ा आघात था और इसके अलावा उन दोनों के बीच ग़लतफ़हमी के कारण दौलत ख़ान और ग़ाज़ी ख़ाँ को बाबर द्वारा बंदी बना लिया गया। यह उसके लिए बड़ा अपमान था जो उसे बाबर के हाथों झेलना पड़ा था। इसी समय इब्राहिम ने उसे यह आश्चर्य प्रकट करते हुए एक ख़त भेजा कि अफ़ग़ानों के आंतरिक मतभेदों को सुलझाने के लिए वह 'विदेशियों' के साथ षड्यंत्र रच रहा है।

आलम ख़ान लोदी ने दिल्ली पर कब्ज़ा करने में सहयोग के बदले पंजाब पर अधिकार प्रदान करने की बाबर से माँग की।

एक स्रोत से यह पता चलता है कि दिलावर ख़ान बाद में 1527 में खानवा के युद्ध में राणा सांगा के खिलाफ़ बाबर के पक्ष से लड़ा था।

3.2.3 पश्चिमी और मध्य भारत

पश्चिमी तथा मध्य भारत में तीन मुख्य शक्तियां थीं: गुजरात, मालवा तथा मेवाड़। जहाँ गुजरात पश्चिमी तट और खम्भात की खाड़ी के क्षेत्र में पड़ता था और जिसकी राजधानी अहमदाबाद थी, वहीं मेवाड़ राज्य गुजरात सल्तनत की सीमा से लगा हुआ था और इसका बड़ा हिस्सा पश्चिमी राजस्थान में स्थित था।

पश्चिमी भारत में मेवाड़ का राजघराना और राणा संग्राम सिंह (1509-1528) की शक्ति सर्वोच्च थी। बाबर का जीवनीकार शेख़ ज़ैन लिखता है, 'दिल्ली, गुजरात, तथा मांडू जैसे बड़े राज्यों में आला दर्जे का एक भी ऐसा शासक नहीं था, जो उसके सामने सिर उठा सके।'

गुजरात में, 1511 में महमूद की मृत्यु के बाद मुजफ़्फ़र शाह द्वितीय गद्दी पर बैठा। लेकिन, उसे मेवाड़ के राणा सांगा का सामना करना पड़ा। गुजरात सल्तनत के पास समृद्ध व्यापारिक पत्तन तथा सम्पन्न समुद्री व्यापार था।

मध्य भारत के क्षेत्रों पर ख़लजियों का शासन था। लेकिन, मालवा उपमहाद्वीप के केन्द्र में स्थित होने के कारण दिल्ली के लोदी सुल्तानों और पश्चिम में गुजरात और मेवाड़ के शासकों के मध्य हमेशा युद्ध का अखाड़ा बना रहा। मेवाड़ तथा गुजरात दोनों के हित में यह था कि मालवा को स्वतंत्र राज्य के

रूप में मध्य-क्षेत्र में बनाए रखा जाए अथवा इस क्षेत्र में अपनी प्रत्यक्ष प्रभुसत्ता को स्थापित किया जाए। मालवा की स्थिति सामरिक रूप से महत्वपूर्ण थी, दक्खन तथा गुजरात के बंदरगाहों को उत्तर भारत से जाने वाले समस्त मार्ग मालवा से होकर जाते थे। इसके अतिरिक्त, यह क्षेत्र युद्ध में काम आने वाले हाथियों से संपन्न था। और यह भी कि यह अत्यंत उर्वर क्षेत्र था जहाँ खाद्यान्नों का बड़े स्तर पर उत्पादन होता था। गुजरात हमेशा अपने खाद्यान्नों की आपूर्ति के लिए मालवा पर निर्भर रहा था।

इस काल की मुख्य विशेषता गुजरात सल्तनत, मालवा और मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह के बीच निरंतर होने वाला त्रिपक्षीय संघर्ष था। मालवा में महमूद द्वितीय के शासनकाल (1510-1531) के दौरान राजपूत प्रभाव हावी हो गया और इस समय मालवा सल्तनत राजपूत प्रधानमंत्री, चंदेरी के मेदिनी राय, के योग्य हाथों में थी जिसे राणा संग्राम सिंह का समर्थन हासिल था। मेदिनी राय के बढ़ते प्रभाव, षड्यंत्रों और टकरावों से मालवा सल्तनत आक्रांत थी जिसने महमूद ख़लजी द्वितीय को गुजरात सल्तनत में शरण लेने पर मजबूर कर दिया। गुजरात का सुल्तान उसकी सहायता के लिए आया और उसने मेदिनी राय पर आक्रमण कर दिया। मेदनी राय को मेवाड़ के राणा का समर्थन प्राप्त था, इस प्रकार मालवा सल्तनत, सोलहवीं शताब्दी तक गुजरात की सल्तनत और मेवाड़ के राणा के बीच युद्ध का अखाड़ा बन गई। इसी बीच मुजफ़्फ़र शाह द्वितीय की मृत्यु (1526) के बाद बहादुर शाह गद्दी पर बैठा। महमूद ख़लजी ने दुर्भाग्यवश बहादुर शाह द्वितीय के भाई चांद ख़ान को शरण प्रदान की थी, इसने गुजरात सल्तनत और मालवा के बीच संघर्ष को जन्म दिया। इस संघर्ष में अंततः महमूद ख़लजी मारा गया और इस प्रकार मालवा सल्तनत का अंत हो गया और बहादुर शाह द्वारा मालवा सल्तनत को गुजरात सल्तनत में मिला लिया गया।

राणा संग्राम सिंह ने भी बाबर से, जब वह काबुल में था, इब्राहिम लोदी पर आक्रमण करने को आमंत्रित किया था, संभवतः बदले में उसे पूर्वी राजपूताना पर अपना वर्चस्व बनाए रखने देने के वादे के साथ।

3.2.4 पूर्वी भारत

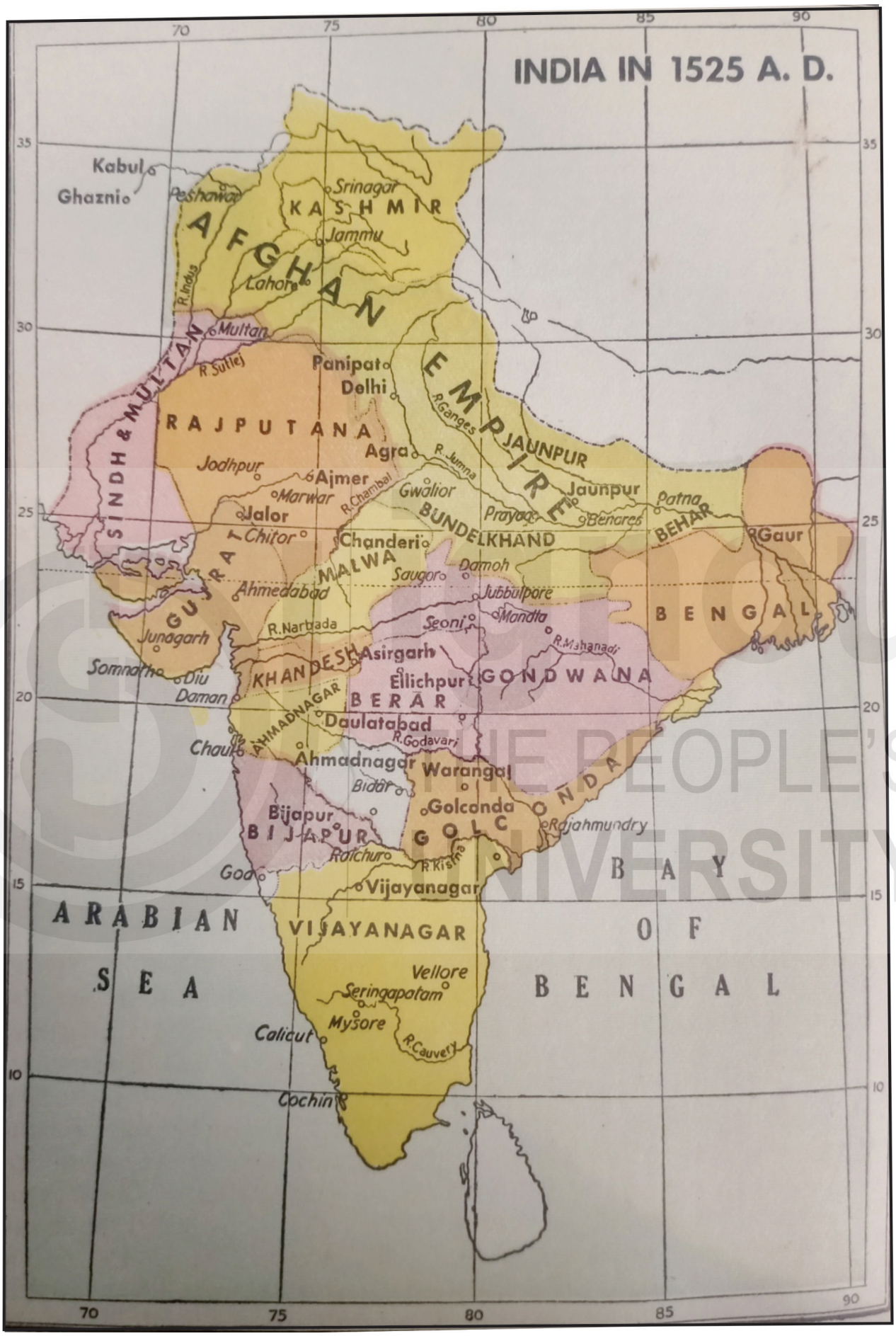
पूर्व की ओर, पन्द्रहवीं शताब्दी में जौनपुर का राज्य प्रमुख शक्ति बनकर उदित हुआ, जिसे पुनः सिकंदर लोदी द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया था और अफ़ग़ान अमीरों के नियंत्रण में दे दिया गया। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत तक लोहानी और फ़रमूली इस क्षेत्र में प्रमुख शक्ति के रूप में उभरे। इस क्षेत्र के प्रमुख सरदारों में जौनपुर का जमाल ख़ान सारंगखानी, गाजीपुर का नासिर ख़ान लोहानी तथा मारूफ़ फ़रमूली थे। बिहार का दरिया ख़ान लोहानी इस क्षेत्र में अफ़ग़ान विद्रोहियों के नेता के तौर पर उभरा। इस क्षेत्र में अफ़ग़ानों की गतिविधियों को दबाने के लिए दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी द्वारा भेजी गई सेनाओं को कई बार दरिया ख़ान लोहानी के हाथों कड़ी टक्कर मिली।

बंगाल में, तुलनात्मक रूप से स्थिति इतनी गंभीर नहीं थी। हुसैनशाहियों का प्रभुत्व बना हुआ था। बंगाल सल्तनत अलाउद्दीन हुसैन शाह (1493-1519) के अधीन समृद्धता को पहुंची। उसका पुत्र नुसरत शाह (1519-33) समान रूप से शक्तिशाली और प्रभावशाली था। बाबर के शब्दों में वह 'पर्याप्त काबिलियत का शहज़ादा' था। लेकिन, इब्राहिम के लिए, 1521 में नसीरुद्दीन नुसरत शाह का बिहार की ओर बढ़ना चिंता में डालने वाला था। नुसरत शाह ने तिरहुत पर कब्ज़ा कर लिया और बंगाल की सल्तनत की सीमाओं को मुंगेर और हाजीपुर तक फैला दिया।

3.2.5 दक्कन और दक्षिण भारत

दक्षिण में विजयनगर का शक्तिशाली साम्राज्य स्थित था और बाबर के आक्रमण के समय इस पर उसके सबसे शक्तिशाली शासक कृष्णदेव राय (1509-1529) का था। विजयनगर के शासकों की शक्ति और मजबूती की प्रशंसा करते हुए बाबर लिखता है, 'विधर्मियों में क्षेत्र और सेना के मामले में बीजानगर का राजा सर्वाधिक महान् है'।

दक्खन में बहमनी सल्तनत पतन की ओर जा रही थी और इसने पाँच दक्खनी सल्तनतों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कियाः अहमदनगर के निज़ामशाही (खानदेश; 1489-1636); बीजापुर के आदिलशाही (1489-1686); गोलकुंडा के कुतबशाही (1512-1687); बरार के इमादशाही (1490-1572); बीदर के बरीदशाही (1489-1619)। खानदेश पर इस वक्त फ़ारूक़ियों का शासन था। लेकिन, आदिल ख़ान फ़ारूक़ी की मृत्यु (1457-1503) के बाद सत्तासीन उसके पुत्र मीरान मुहम्मद का महानता में उससे कोई भी मुकाबला नहीं था।



मानचित्र 3.1: 1525 में भारत

स्रोत : प्रसाद, ईश्वरी, (1985) *ए शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रुल इन इंडिया: फ्रॉम एडवेन्ट ऑफ इस्लाम टू द डैथ ऑफ औरंगज़ेब* (इलाहाबाद: द इंडियन प्रेस), पृ. 211

बोध प्रश्न-1

1) आगरा और दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में स्थित अफ़ग़ान सरदारों के विषय में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) मेवाड़, मालवा तथा गुजराती राज्यों के बीच के त्रिपक्षीय संघर्ष का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

3) लोहानी तथा फ़रमूली अफ़ग़ानों के प्रभुत्व के बारे में एक संक्षिप्त नोट लिखिए।

.....

.....

.....

4) बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर दक्खन और दक्षिण भारत की राजनीतिक व्यवस्थाओं की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

3.3 बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या की राजनीतिक व्यवस्था पर रशब्रुक विलियम्स के विचार

रशब्रुक विलियम्स पन्द्रहवीं शताब्दी को 'अद्वितीय भ्रांति तथा अव्यवस्था' का युग कहते हैं; जबकि उनके अनुसार सोलहवीं शताब्दी 'पुनर्निमाण' का युग था, एक संक्रमण काल था। उनका तर्क है कि, 'पन्द्रहवीं शताब्दी के दौरान हिन्दुस्तान का कोई इतिहास नहीं है, क्योंकि हिन्दुस्तान अलग-अलग राज्यों का समूह बनकर रह गया है' (विलियम्स 1918: 4)। बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर सोलहवीं शताब्दी के भारत की राजनीति पर उनका विश्लेषण धार्मिकता का पुट लिए हुए है। रशब्रुक विलियम्स अपनी प्रख्यात कृति *एन एम्पायर बिल्डर ऑफ़ द सिक्सटींथ सेंचुरी* में यह तर्क देते हैं कि बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर राजपूत रियासतें 'हिन्दुस्तान' पर नियंत्रण प्राप्त करने के उद्देश्य से एक 'संघ' का निर्माण करने में सफल हो गई थीं और, अगर बाबर ने आक्रमण न किया होता तो राणा सांगा (राणा संग्राम सिंह) के शानदार नेतृत्व में उत्तर भारत में राजपूत अपनी शक्ति स्थापित करने में कामयाब हो गए होते।

इसके अतिरिक्त रशब्रुक विलियम्स का तर्क हैं कि यह 'संघ' मुख्यतः धार्मिक आधारों पर संगठित था और राणा सांगा के नेतृत्व में 'राजपूत संघ' धार्मिक जोश के साथ 'हिंदू साम्राज्य' स्थापित करने को तत्पर था। इस प्रकार विलियम्स का मुख्य तर्क है कि प्रारंभिक सोलहवीं शताब्दी की राजनीति में 'मुस्लिम' शक्ति का कमज़ोर पड़ना और 'राजपूतों की प्रधानता' मुख्य कारक थी।

रशब्रुक विलियम्स के अनुसार, 'हिंदुस्तान के छोटे-छोटे राज्य चार सुपरिभाषित समूहों में रखे जा सकते हैं'। प्रथम, वह है जिसे इस्लामिक शक्तियों का उत्तरी क्षेत्र कहा जा सकता है, जो सिंध से बंगाल की खाड़ी (सिंध, मुल्तान, पंजाब, आगरा तथा दिल्ली के आस-पास की स्वतंत्र रियासतें और बंगाल) तक एक बड़े अर्द्धवृत्ताकार क्षेत्र में फैला है... दूसरे समूह को दक्षिण की इस्लामिक शक्तियों के क्षेत्र का नाम दिया जा सकता है (गुजरात, मालवा, खानदेश, बहमनी)... इस्लामिक राज्यों के इन उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्रों के बीच राजपूताना स्थित है जिसने इस्लामिक राजनीतिक क्षेत्रों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। इसकी रियासतों में प्रमुख मारवाड़ और, सबसे ऊपर, मेवाड़ की शक्ति सर्वोच्चता हासिल करने की ओर तेज़ी से अग्रसर है। दक्षिणी मुस्लिम क्षेत्र के दक्षिण में एक अन्य महान् हिंदू शक्ति स्थित है, विजयनगर का साम्राज्य स्थित है ... वहीं इसके पूर्व में उड़ीसा की हिंदू रियासत स्थित है, जो राजनीतिक रूप से कम महत्व रखती है, लेकिन बंगाल के दक्षिण की ओर विस्तार के लिए यह, एक

कम या ज्यादा प्रभावी, अवरोध के रूप में कार्य करती है... कुल मिलाकर कहें तो... इस्लामिक शक्तियों के दो समूह हैं और प्रत्येक समूह के दक्षिण में एक दुर्जेय हिंदू राजव्यवस्था इसके लिए ख़तरा पैदा करती है' (विलियम्स 1918: 4-6)। वह तर्क देते हैं कि, 'विजयनगर के राय उन राज्यों के साथ निरंतर संघर्ष में लगे हुए थे जिन्हें मैंने इस्लामिक राज्यों का दक्षिणी क्षेत्र कहा है...'। पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत तक बहमनी राज्य का विघटन हो गया जिसने पाँच दक्षिणी राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया: अहमदनगर के निज़ामशाही (खानदेश; 1489-1636); बरार के इमादशाही (1490-1572); बीदर के बरीदशाही (1489-1619); बीजापुर के आदिलशाही (1489-1686); और गोलकुंडा के कुतबशाही (1512-1687। रशब्रुक विलियम्स (1918: 13) आगे रेखांकित करते हैं कि, 'हिंदू संघ की शक्ति (संग्राम सिंह के नेतृत्व में) जितने उच्च स्तर पर थी और उतना ही इस्लाम के संसाधनों का पतन भी था, जब बाबर और उत्तर के तुर्क योद्धाओं के आगमन ने एक बार फिर संतुलन को राजपूतों के विरुद्ध कर दिया।' रशब्रुक विलियम्स (1918: 18) ने इस बात पर बल दिया है कि 'इस्लामी शक्तियाँ कमज़ोर पड़ चुकी थीं, अपने ही विघटनों से विचलित थीं; राजपूत संघ, मेवाड़ के नेतृत्व में, अपनी पहुँच में आ चुके साम्राज्य पर लगभग नियंत्रण पा ही चुका था। लेकिन भाग्य में कुछ और लिखा था, कि संग्राम सिंह अपने पुरस्कार से हाथ धो बैठा था, कि इस्लाम की ताक़तें फिर से स्थापित हो चुकी थीं, कि राजपूत उपभोग करने के बजाय अभी और सहने को अभिशप्त थे'।

रशब्रुक का यह अनुमान बाबर के उस प्रसिद्ध उद्धरण पर आधारित है जिसमें वह कहता है:

> मेरी विजय के समय हिंदुस्तान पर पाँच मुस्लिम शासकों (*पादशाह*) और दो *'काफ़िर'* शासकों का शासन था। ये सम्मानित और स्वतंत्र शासक थे, लेकिन इसके अलावा, पहाड़ों और जंगलों में, कई *राय* और *राजा* थे, जिनको कम ही मान (*किचिक करीम*) दिया जाता था।

अपने तर्क को और मजबूत करने के लिए रशब्रुक विलियम्स द्वारा उद्धृत अन्य स्रोत खानवा के युद्ध के ठीक बाद बाबर द्वारा जारी *फ़तहनामा* था जहाँ वह 'काफ़िरों' और 'हिंदुओं' के ख़िलाफ़ विजय का दावा करते हुए *ग़ाज़ी* (धर्मयुद्ध का विजेता) की उपाधि धारण करता है:

> इस्लाम की ख़ातिर, मैं जंगलों में भटका,
> 'काफ़िरों' और हिंदुओं से युद्ध की तैयारी की,
> शहीद की तरह कुर्बान हो जाने का संकल्प किया,
> ख़ुदा की मेहरबानी है! मैं एक *ग़ाज़ी* हो गया।

इस प्रकार रशब्रुक विलियम्स ने इस बात पर बल दिया है कि राणा सांगा के नेतृत्व में संगठित 'राजपूत संघ' धार्मिक भावनाओं से संचालित था और उसका इरादा 'इस्लामी शक्ति' को उखाड़ फेंकना था।

3.4 रशब्रुक विलियम्स की अवधारणा की समीक्षा

रशब्रुक विलियम्स के विश्लेषण की इतिहासकारों ने गम्भीर आलोचना की है।

उनका तर्क है कि बाबर ने अपने वृत्तांत में मात्र उस समय मौजूद शक्तियों का वर्णन भर किया है और कहीं भी यह ज़ाहिर नहीं किया है कि यह शक्तियाँ धार्मिक आधारों पर संगठित थीं।

इसके अतिरिक्त, बाबर, स्वयं यह स्वीकारता है कि स्वयं कई हिंदू *राय* और *राणा* 'इस्लाम' के प्रति समर्पित थे।

इतिहासकारों का तर्क है कि, अगर इस कथित 'राजपूत संघ' की संरचना पर नजर डालें, तो यह अनन्य रूप से केवल राजपूत/हिंदू सरदारों का समुच्चय नहीं था, बल्कि कई प्रमुख मुस्लिम अफ़ग़ान सरदार भी इस 'संघ' का हिस्सा थे और उन्होंने खानवा के युद्ध (1527) में बाबर के विरुद्ध महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इनमें से सबसे प्रमुख हसन ख़ान मेवाती (जो राणा की ओर से लड़ते हुए मारा गया था), महमूद ख़ान लोदी, इत्यादि थे।

इसके विपरीत *वाक़ियात-ए मुश्ताकी* (*c.* 1560) के अनुसार, हसन ख़ान मेवाती भारत से मुग़ल सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए बनाए गए इस 'संघ' के निर्माण के लिए उत्तरदायी था। वह वर्णन करता है कि, 'हसन ख़ान मेवाती ने सुल्तान सिकंदर लोदी के पुत्र महमूद को दिल्ली का सुल्तान घोषित किया और चित्तौड़ के राणा (राणा सांगा), राय सरहदी (चंदेरी के राय) और अन्य अफ़ग़ानों को आमंत्रित किया तथा बादशाह बाबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया।'

इसके अतिरिक्त, हमें राणा द्वारा स्वयं को 'हिंदुस्तान' के राजा घोषित किए जाने के कोई संकेत नहीं मिलते हैं। इसके विपरीत, सुल्तान महमूद ख़ान लोदी, जैसा कि *वाक़ियात-ए मुश्ताकी* में दर्ज है, को दिल्ली का सुल्तान घोषित किया गया था।

निश्चित रूप से, बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर राणा की शक्ति अपने चरम पर थी। तथापि, अपने प्रयासों में बाबर कभी भी राजपूत शक्ति के प्रभुत्व को समाप्त करने के प्रति चिंतित दिखाई नहीं देता है, बल्कि उसके लिए अफ़ग़ानों की समस्या को तुरंत हल किए जाने की ज्यादा अहम् ज़रूरत थी। न केवल बाबर बल्कि हुमायूँ भी पूरे समय अफ़ग़ानों को ही अपना प्रमुख शत्रु मानता रहा और वह हमेशा उनसे निपटने में लगा रहा और अंततः एक अफ़ग़ान, शेरशाह, के हाथों उसे मुँह की खानी पड़ी। अतः धार्मिक आधार पर राजपूत 'संघ' के निर्माण का विलियम्स का विश्लेषण बहुत ही कमज़ोर तथ्यों पर गढ़ा गया प्रतीत होता है और इस प्रकार सत्य की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है।

बोध प्रश्न-2

1) बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर राजनीतिक व्यवस्थाओं पर रशब्रुक विलियम्स के विश्लेषण की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर राजनीतिक व्यवस्थाओं पर रशब्रुक विलियम्स के विश्लेषण की आलोचना प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

3.5 सारांश

बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर लोदी सल्तनत की शक्ति कमज़ोर पड़ती जा रही थी और लोदियों का प्रभाव केवल दिल्ली के आसपास के क्षेत्र तक सिमट कर रह गया था। अफ़ग़ान सरदारों के षड्यंत्र तथा महत्वाकांक्षाओं ने स्थिति को और संकटपूर्ण बना दिया था। इसके विपरीत, बाबर के आक्रमण की पूर्व-संध्या पर पूर्वी भारत, दक्खन और दक्षिण भारत में अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली शासक राज कर रहे थे। लेकिन, पश्चिमी और मध्य भारत में निरंतर संघर्ष जारी थे और मालवा अक्सर गुजरात व मेवाड़ के शासकों की महत्वाकांक्षाओं का शिकार बना रहा। शक्तिशाली 'हिंदू' (मेवाड़ तथा विजयनगर) और 'मुस्लिम' (दिल्ली, आगरा, बंगाल, बिहार और पश्चिमोत्तर भारत), दोनों ही प्रकार की रियासतों के शासक एक दूसरे के क्षेत्रों को हड़पने के लिए लगातार संघर्षरत थे। तथापि, रशब्रुक विलियम्स के विश्लेषण को स्वीकारना गलत होगा कि बाबर के विरुद्ध राजपूत शक्तियों द्वारा धार्मिक आधार पर एक 'राजपूत संघ' का निर्माण किया गया था। उस समय का एक प्रमुख अफ़ग़ान सरदार हसन ख़ान मेवाती खानवा के युद्ध में बाबर के विरुद्ध लड़ा और मारा गया था।

3.6 शब्दावली

सरवानी अफ़ग़ानिस्तान की एक पश्तून जनजाति

लोहानी/नोहानी एक अफ़ग़ान जनजाति; ये बिहार के इलाक़े में शक्तिशाली थे। दरिया ख़ान नोहानी उनका सर्वाधिक प्रमुख नेता था जिसने इब्राहिम लोदी के खिलाफ़ विद्रोह किया और स्वयं को स्वतंत्र घोषित करते हुए सुल्तान मुहम्मद की उपाधि धारण की

फ़रमूली अफ़ग़ानिस्तान की एक पश्तून जनजाति; ग़ज़नी के शेख़ज़ादा; सर्वप्रमुख फ़रमूली नेता मारूफ़ फ़रमूली था जो कन्नौज का *मुक़्ता* था और जिसने इब्राहिम के ख़िलाफ़ विद्रोह किया था; शेख़ बायज़ीद फ़रमूली (अवध का *मुक़्ता*), इब्राहिम लोदी का अन्य एक प्रमुख अमीर था; अन्य फ़रमूली अमीर,

	अली ख़ान फ़रमूली ने सुल्तान इब्राहिम लोदी की ओर से बाबर के ख़िलाफ़ लड़ाई में भाग लिया था
कक्कर/खोखर	उत्तरी और पश्चिमी पंजाब/कोह-ए जूद (Salt Range) में आबाद एक लड़ाकू जनजाति
नियाज़ी	अफ़ग़ानिस्तान की एक पश्तून जनजाति; लोदी अमीर लंगर ख़ान नियाज़ी ने पानीपत की लड़ाई में बाबर का साथ दिया था

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें उप-भाग 3.2.1
2) देखें उप-भाग 3.2.3
3) देखें उप-भाग 3.2.4
4) देखें उप-भाग 3.2.5

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 3.3
2) देखें भाग 3.4

3.8 संदर्भ ग्रंथ

डेल, स्टीफ़न फ्रेड्रिक, (2018) *बाबरः तिमूरिद प्रिन्स एंड मुग़ल एम्परर्स,* 1484-1530 (नई दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

डेल, स्टीफ़न फ्रेड्रिक, (2004) *द गार्डेन ऑफ़ द ऐट पैराडाइज़ेजः बाबर एंड द कल्चर ऑफ़ एम्पायर इन सेंट्रल एशिया, अफ़ग़ानिस्तान एंड इंडिया (1483-1530)* (लाइडनः ब्रिल).

हसन, मोहिबुल, (1985) *बाबरः फ़ाउंडर ऑफ़ द मुग़ल एम्पायर इन इंडिया* (नई दिल्लीः मनोहर पब्लिकेशन).

मुश्ताकी, शेख़ रिज़्कुल्लाह, (1993) *वाक़ियात-ए मुश्ताकी,* इक़्तिदार हुसैन सिद्दीक़ी द्वारा अनुवादित तथा सम्पादित (नई दिल्लीः नॉर्दर्न बुक सेंटर).

पांडे, अवध बिहारी, (1956) *द फ़र्स्ट अफ़ग़ान एम्पायर इन इंडिया (1451-1526 A.D.)* (नई दिल्लीः बुकलैंड लिमिटेड).

प्रसाद, ईश्वरी, (1958) *अ शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन इंडियाः फ्रॉम द एडवेंट ऑफ़ इस्लाम टू द डेथ ऑफ़ औरंगज़ेब* (इलाहाबादः द इंडियन प्रेस).

शर्मा, एस. आर., (1940) *मुग़ल एम्पायर इन इंडिया* (बॉम्बेः कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस).

सिद्दीक़ी, इक़्तिदार हुसैन, (1969) *सम आस्पेक्ट्स ऑफ़ अफ़ग़ान डेस्पाटिज़्म इन इंडिया* (अलीगढ़ः थ्री मैन पब्लिकेशन).

त्रिपाठी, आर. पी., (1963) *राइज़ एंड फ़ॉल ऑफ़ मुग़ल एम्पायर* (नई दिल्लीः सेंट्रल बुक डिपो).

विलियम्स, रशब्रुक एल. एफ़., (1918) *एन एम्पायर बिल्डर ऑफ़ द सिक्सटींथ सेंचुरीः अ समरी अकाउंट ऑफ़ द पोलिटिकल करियर ऑफ़ ज़हीरुद्दीन मुहम्मद* (लंदनः लॉंगमैन्स, ग्रीन एंड कम्पनी).

3.9 शैक्षणिक वीडियो

टॉकिंग हिस्ट्री।8।दिल्लीः द फाउंडेशन ऑफ मुगल एम्पायर। राज्य सभा टीवी
https://www.youtu.be/anQWopp1NCo

इकाई 4 तैमूरिद साम्राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि*

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 तूरान और ईरान की भौगोलिक सीमा

4.3 उज़बेगों और सफ़ावियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

4.4 मध्य एशिया में राजनैतिक संघटन की पूर्व-संध्या का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

4.5 ट्रांसऑक्सियाना में उज़बेग सत्ता की स्थापना

4.5.1 उज़बेगों, ईरानियों और तैमूरिदों के बीच त्रिपक्षीय संघर्ष

4.5.2 उज़बेग सत्ता का उदय तथा पुनरुत्थान

4.5.3 उज़बेग साम्राज्य

4.6 सफावियों का उद्भवः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

4.6.1 अक़ क़्युयूनलू और क़ारा क़्युयूनलू

4.6.2 तुर्कमान और सफ़ावी

4.6.3 शियावाद और सफ़ावी

4.7 सफ़ावी और उज़बेग-ऑटोमन संघर्ष

4.8 मध्य एशिया तथा बाबर

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.12 शैक्षणिक वीडियो

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- भारतीय सीमा-क्षेत्र में मुगलों की उपस्थिति की पृष्ठभूमि से अवगत हो सकेंगे तथा उनके मूल स्थान और पूर्वजों के बारे में बता सकेंगे,
- मुगल साम्राज्य के दो शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों की भौगोलिक सीमा को पहचान सकेंगे,
- उज़बेग और सफ़ावी साम्राज्यों की स्थापना के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को रेखांकित कर सकेंगे,
- आरंभिक काल में मुगलों की आंतरिक और बाह्य नीतियों और निर्णयों को प्रभावित और आकार देने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे, और
- मध्य एशिया में बाबर के संघर्ष के बारे में जान सकेंगे।

* प्रो. मंसूरा हैदर, सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

यह इकाई हमारे पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारतः 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य तक*, के खंड 1, इकाई 1 से ली गई है।

4.1 प्रस्तावना

सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर कुछ महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय राजनीतिक उथल-पुथल हुई तथा साम्राज्यों में बदलाव आया। इस बदली हुई स्थिति में मुगलों ने भारत की ओर रुख किया और यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। इसी माहौल में तूरान (मध्य एशिया में ट्रांसऑक्सियाना) और ईरान दो नये राज्य कामय हुए। तूरान पर उज़बेगों का और ईरान पर सफ़ावी शासकों का शासन कायम हुआ।

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम दशक में मध्य और पश्चिम एशिया में उभरे राजनीतिक ढाँचे का अध्ययन जरूरी है क्योंकि इन क्षेत्रों और भारत के बीच परंपरागत और नजदीकी सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध थे। शैबानी खाँ के नेतृत्व में दश्त-ए किपचक के विस्थापित उज़बेग राजकुमारों ने तैमूर द्वारा स्थापित राज्य को नष्ट कर दिया और तैमूर शासकों से मध्य एशिया छीन लिया। वस्तुतः इसी कारण से बाबर भारत की ओर अग्रसर हुआ।

मुगलों का मूल स्थान मध्य एशिया था, जहाँ उन्होंने लगभग तेरह दशकों (1370-1505) तक शासन किया। इस दौरान उन्होंने एक कुशल और प्रतिष्ठित प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। मुगलों ने वसीयत के रूप में तुर्क-मुगल शब्दावली, संस्थाएँ (राजनीतिक और आर्थिक) और प्रथाएँ (देखिए **खंड III** एवं **IV**) प्राप्त कीं, जिनका स्पष्ट प्रभाव भारत में मुगल शासन के दौरान देखा जा सकता है। मुगलकालीन भारत के अध्ययन के लिए आसपास के क्षेत्रों के बारे में ज्ञान जरूरी है। मुगलकालीन भारत को इन क्षेत्रों में हुई गतिविधियों से जोड़कर ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन से हमें भारत में मुगल शासन के ऐतिहासिक परिपेक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और प्रकृति को समझने में मदद मिलेगी। मुगलों के साथ-साथ मध्य एशिया और ईरान का एक साथ उत्थान और पतन हुआ। सोलहवीं शताब्दी के दौरान प्रत्येक स्तर पर इन राज्यों के बीच राजनीतिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित हुए। विचारों के आदान-प्रदान, लोगों के आने-जाने और व्यापारिक वस्तुओं के विनिमय के कारण युगों में चली आ रही समान सांस्कृतिक विरासत समृद्ध हुई।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि पश्चिम और मध्य एशिया की परिभाषा विवादास्पद है, क्योंकि इसके सीमा-क्षेत्र का निर्धारण भौगोलिक या क्षेत्रीय प्रसार की अपेक्षा व्याख्याओं के अनुरूप बदलता रहा है। जिस क्षेत्र का अध्ययन हम कर रहे हैं उसे सर्वसम्मत नाम 'अंदरूनी एशिया'('Inner Asia') कहना ही अधिक संगत होगा। इस संदर्भ में पश्चिम और मध्य एशिया का प्रयोग दो 'राज्यों' क्रमशः तूरान और ईरान के लिए किया जाएगा। सोलहवीं शताब्दी के दौरान एक स्वतंत्र राजनीतिक और सांस्कृतिक अस्तित्व के रूप में उभरे ये राज्य ज़्यादातर किसी केन्द्रीकृत शक्ति (जैसे उमय्यद, अब्बासिद, मंगोल और तैमूरिद) के अधीन स्थापित बृहद् साम्राज्य के अंग हुआ करते थे। अतः दोनों राज्यों की प्रशासनिक और संगठनात्मक व्यवस्था में काफी समानताएँ थीं। उनकी ज़मीन एक रही, युगों से चली आ रही समानताएँ बनी रहीं, परम्पराएँ और विरासत समान रहीं, पर युग-परिवर्तन से उत्पन्न धार्मिक-राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों ने उन्हें एक नया और अलग विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। हालांकि 16वीं शताब्दी के दौरान इन दोनों राज्यों का आधार जनजातीय ही था, उनके सांस्कृतिक और प्रजातीय अलगाव बने रहे (सांप्रदायिक विभेद के कारण यह काफी गहरा हो गया) तथा उनके पतन होने तक यही स्थिति बनी रही। इस इकाई में तूरान और ईरान से संबद्ध विभिन्न मुद्दों की जानकारी दी जाएगी।

4.2 तूरान और ईरान की भौगोलिक सीमा

'अंदरूनी एशिया' ('Inner Asia') क्षेत्र जिसे तूरान भी कहते हैं, दो नदियों के बीच बसा हुआ था। अरब आक्रमणकारियों ने इस क्षेत्र को मवारून्नहर (अर्थात दो नदियों (*दरियाओं*) – सीर एवं अमू के बीच) कहकर पुकारा। यह क्षेत्र उत्तर में अरल सागर, सीर दरिया और तुर्किस्तान से घिरा था, दक्षिण में ईरान, अमू दरिया और अफगानिस्तान था; पूर्व में तीएन शान और हिंदुकुश

पर्वतों से लेकर कराकोरम रेगिस्तान था, पश्चिम में कैस्पियन सागर अपने विविधतापूर्ण भौगोलिक परिवेश (शुष्क और अर्द्धशुष्क भूमि, घास के मैदान, रेगिस्तान पहाड़, घाटी और मरूभूमि) के साथ था। इस प्रकार इस क्षेत्र में विभिन्न प्रकार की जीवन शैलियाँ देखने को मिलती थीं। यहाँ **खानाबदोश** और **पशुपालक** भी थे तथा स्थाई रूप से बसे हुए लोग भी। इस क्षेत्र में ज़मीन के अंदर जल प्रवाह था और जगह-जगह घिरे हुए घाटी क्षेत्र (basins) थे, जो समुद्र से दूर थे और अटलांटिक और प्रशांत सागर के परिसंचरण से अलग-थलग थे। कृषि के अलावा पशुपालन एक लोकप्रिय व्यवसाय था। यह स्थान घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ से काफी मात्रा में भारत को घोड़ों का निर्यात किया जाता था। समरकंदी कागज और फल (ताजे फल और सूखे मेवे भी) निर्यात किए जाते थे। एलबुर्ज पर्वतों के पूर्वी घाट ईरानी पठार को तुर्कीस्तान (ईरान) से अलग करते थे।

जहाँ तक भौगोलिक विस्तार का प्रश्न है, ईरान में एशिया माइनर और कॉकेसस की पहाड़ी श्रृंखलाओं से लेकर पंजाब के मैदानी इलाके भी शामिल थे, जिसे ईरानी पठार के नाम से जाना जाता था। मध्य पठार के रेतीले लवणीय रेगिस्तान को पहाड़ी श्रृंखला ने घेर रखा था। अतः यह एक प्रकार की बंद घाटी (basin) बन गया था।

ईरान के चार प्रमुख हिस्से थेः

- खुज़िस्तान और लघु बाह्य मैदानी क्षेत्र को मिलाकर बनी ज़ागरोस व्यवस्था,
- ईरान की उत्तरी भूमि (जैसे, अलबुर्ज और तालिश व्यवस्था) और कैस्पियन समतल भूमि,
- पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी उच्च भूमि रिम (किनारा; rim), और
- अंदरुनी क्षेत्र।

जहाँ तक आर्थिक जीवन का प्रश्न है सभी प्रकार की जीवनशैलियाँ एक साथ मौजूद थीं। ऊपरी भाग में पशुपालन, निचले इलाकों में कृषि व्यवस्था तथा पश्चिम में कुर्दिश गडरिये खानाबदोश जीवन बिताते थे। ज़ागरोस के उत्तरी-पश्चिमी भाग प्राचीन पूर्वी-पश्चिमी व्यापार मार्गों से जुड़े हुए थे और यहाँ से ईरानी ऊन, चमड़े, कालीन और रेशम का निर्यात होता था।

4.3 उज़बेगों और सफ़ावियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

उज़बेग

तूरान या ट्रांसऑक्सियाना के उज़बेग चंगेज के बड़े पुत्र जूजी के वशंज थे। उन्होंने दश्त-ए किपचक के उज़बेग खाँ (1312-41) पर अपना वंश नाम आधारित किया था और वे जूजी के वंशज थे। उज़बेग चगताई तुर्की बोलते थे और तुर्क-मंगोल परंपरा का निर्वाह करते थे। वे कट्टर **सुन्नी** थे और हनफी कानून मानते थे। नैमान, कुशजी, दुर्मान, कुनघरात और अन्य तुर्क-मंगोल जनजातियाँ उज़बेग राज्य को अपना समर्थन देती थीं। बार-बार आक्रमण करके इनके विरोधी कबीलों मंगोल, कज़ाक़ और किरघिज, ने इनकी शक्ति काफी कम कर दी थी।

सफ़ावी

सफ़ावी मूलतः ईरानी (कुर्दिस्तान से) कुल-वंश से थे। वे **शिया** मत के अनुयायी थे और फारसी-इस्लामी परंपरा का निर्वाह करते थे जहाँ वे शासन करने के लिए बुलाए गए थे। वे अज़री तुर्की और फारसी बोलते थे। सूफी मूल के होने के कारण उन्होंने बाद में एक प्रभावी वंशावली तैयार की। सफ़ावी शक्ति का मूल आधार तुर्कमान जनजातियों का संगठन था, परन्तु प्रशासनिक नौकरशाही में ईरानी तत्व भी बराबरी के स्तर पर मजबूत था। बाद में जॉरजियन और सिरकासियन नामक दो समूह और जुड़े। ये चारों तत्व (खासकर **तुर्कमान समूह**) बाह्य/विदेशी राजनीतिक संबंधों को मजबूती प्रदान करने के प्रमुख स्रोत थे, क्योंकि वे हमेशा एक दूसरे के खिलाफ षड्यंत्र करते रहते थे।

बोध प्रश्न-1

1) मुगल शासकों के संदर्भ में मध्य एशिया के इतिहास के अध्ययन के महत्व का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) तूरान और ईरान का भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) उज़बेगों और सफ़ावियों के पूर्ववर्ती इतिहास का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.4 मध्य एशिया में राजनैतिक संघटन की पूर्व संध्या का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

तैमूरकालीन ट्रांसऑक्सियाना में गृह युद्ध आम बात थी। इस दौरान ट्रांसऑक्सियाना के तैमूरी शासक (जैसे अबू सईद, मुहम्मद जूगी, सुल्तान हुसैन बैक़रा और मनूचिहर मिर्ज़ा) दश्त-ए किपचक के उज़बेग शासक अबुल खैर से अपने प्रतिद्वन्द्वियों के खिलाफ सहायता माँगते रहते थे। उन्होंने तैमूरी राजनीति में सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया और अबू सईद (1451), मुहम्मद जूगी (1455), और अन्य शासकों को गद्दी दिलाने में मदद की। दश्त में अबुल खैर (1428-68) के साम्राज्य के पतन के बाद उसके पोते शैबानी ने मध्य एशिया में तैमूर शासकों की शरण ली। इस समय ट्रांसऑक्सियाना में पाँच राज्य थे। सुल्तान अबू सईद (r.1451-69) के तीन पुत्र सुल्तान महमूद मिर्ज़ा (1453-1495), सुल्तान अहमद मिर्ज़ा (r.1469-94) और उमर शेख मिर्ज़ा (r.1469-1494) का तीन राज्यों पर कब्जा था, जिसमें समरकंद, बुखारा, तिरमिज़, हिसार, कुंदूज, बदख्शान और फरगाना और इसके आसपास के इलाके शामिल थे। चौथे तैमूरी राज्य बल्ख और खुरासान पर सुल्तान हुसैन बैक़रा का आधिपत्य था। इसके अलावा ताशकंद और मुग़लिस्तान ***खानेत*** (मंगोल इलाका) था जिस पर मंगोल शासक यूनुस खाँ (1462-87) और उसके दो पुत्रों महमूद खाँ और अहमद खाँ का शासन था। यूनुस खाँ की तीन बेटियों की शादी ऊपर उल्लिखित अबू सईद के बेटों के साथ हुई थी। इन पाँचों राज्यों के बीच कट्टर दुश्मनी थी और ये एक दूसरे से ईर्ष्या-द्वेष का भाव रखते थे। इस कारण इनमें अक्सर लड़ाई हुआ करती थी। ऐसी ही एक लड़ाई, जिसे सीर के युद्ध के नाम से जाना जाता है सुल्तान अहमद और सुल्तान महमूद के बीच लड़ी गई थी। इस युद्ध में मंगोल युद्ध कला का सामना करने के लिए सुल्तान अहमद ने शैबानी खाँ की सहायता ली। इसमें शैबानी खाँ अपने दल-बल के साथ शामिल हुआ। हालांकि इस युद्ध में शैबानी खाँ सुल्तान अहमद मिर्ज़ा की सहायता के लिए आया था, परन्तु वह सुल्तान महमूद से पहले ही गुप्त संधि कर चुका था। इस कारण महमूद खाँ की अप्रत्याशित विजय हो गयी। इस सहायता के लिए उपहारस्वरूप शैबानी खाँ ओतरार का गवर्नर बनाया गया। ओतरार ख्वारिज़मिया का एक शहर था। इससे शैबानी खाँ को ट्रांसऑक्सियाना में एक आधार मिल गया, जिसकी उसे काफी दिनों से प्रतीक्षा थी। इसके बाद शैबानी खाँ ने विभिन्न क्षेत्रों (खानेत) में फैली अव्यवस्था का फायदा उठाया और अपनी राजनीतिक कुशाग्रता और छल-बल से वहाँ पर कब्जा जमा लिया।



मानचित्र 4.1: पन्द्रहवीं शताब्दी का मध्य एशिया

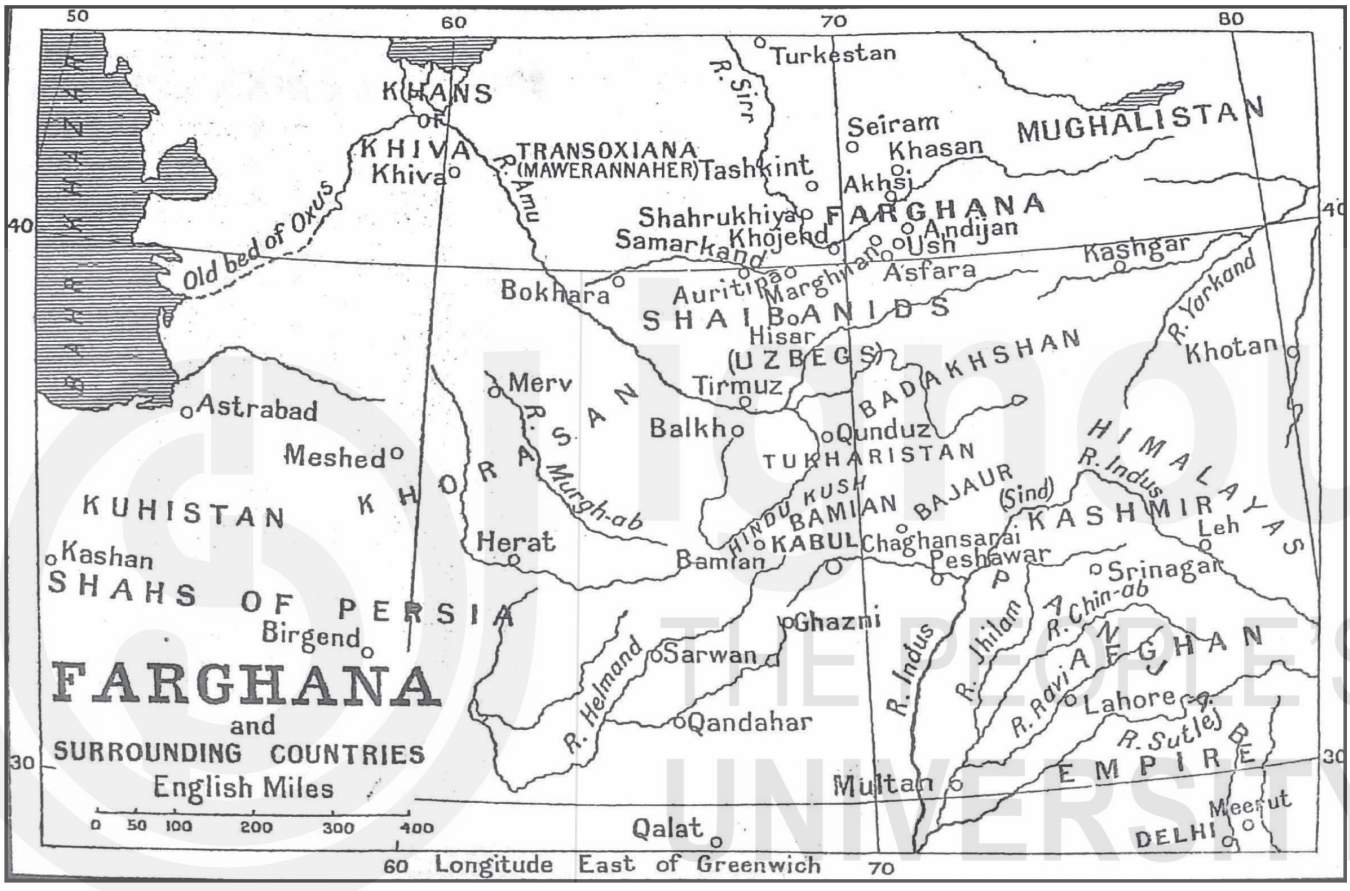
4.5 ट्रांसऑक्सियाना में उज़बेग सत्ता की स्थापना

उमर शेख और सुल्तान अहमद मिर्ज़ा की मृत्यु के बाद सुल्तान महमूद मिर्ज़ा की भी हत्या कर दी गयी। समरकन्द और हिसार की गद्दी के लिए उसके दोनों पुत्र सुल्तान अली और बैसुन्धर मिर्ज़ा एक दूसरे के दुश्मन हो गये। तैमूरिद साम्राज्य में फैली अव्यवस्था के दौरान तरखान कुलीन वर्ग शक्तिशाली हो गया। उन्होंने न केवल पूरी राजस्व व्यवस्था पर अपना अधिकार जमा लिया, वरन् 15 अवसरवादी संधियाँ कीं और एक शासक को दूसरे के खिलाफ लड़वाया। इस स्थिति का लाभ उठाकर शैबानी खाँ ने 1499 में तैमूरी सरदार बक़र तरख़ान से बुखारा छीन लिया और बाद में समकन्द पर भी घेरा डाल दिया। चूंकि राजमाता ज़ुहरा बेगी उज़बेग महिला थीं अतः उन्होंने समकन्द के समर्पण की एक शर्त रखी कि उसके बेटे सुल्तान अली को मनपसंद प्रांत का गवर्नर बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार बिना युद्ध लड़े 1500 सी ई में शैबानी खाँ का समकन्द पर कब्ज़ा हो गया। जल्द ही सुल्तान अली की मृत्यु हो गयी। उज़बेग बहुत जल्द ही निकाल फेंके गये। ख़्वाजा अब्दुल मुकर्रम ने समरकन्दियों का नेतृत्व किया और बाबर को आमंत्रित किया। सरीपुल के युद्ध में (1501) बाबर की हार हुई। किसी प्रकार की सहायता के अभाव में बाबर ने समरकन्द छोड़ दिया और अपने चाचा महमूद खाँ के पास चला गया। 1503 के आरंभ में शैबानी खाँ ने बाबर, उसके मामू महमूद और अहमद खाँ के संयुक्त मोर्चे को बुरी तरह हराया। बाबर के दोनों मामुओं को कैद भी कर लिया। बाबर के अमीर तंबाल ने शैबानी खाँ को फरगाना पर अधिकार जमाने के लिए आमंत्रित किया। शैबानी खाँ ने 1504 सी ई में फरगाना और कुंदूज पर अधिकार जमा लिया और बल्ख, मेमना और फरयाब को 1505 सी ई में फतह कर लिया। हालांकि पुराने रिश्तों का ख्याल कर शैबानी खाँ ने मंगोल खानों, महमूद और अहमद (जिसकी कुछ समय पश्चात् ही मृत्यु हो गयी), को छोड़ दिया, पर अंततः महमूद खाँ और उसके बच्चों को मौत के घाट उतार दिया (1508) ताकि उसके साम्राज्य के लिए कोई खतरा न उत्पन्न हो सके।

सुल्तान हुसैन बैक़रा के नेतृत्व में तैमूरिद राजकुमारों बाबर, बदिउज़्ज़माँ और मुज़फ्फर हुसैन ने एक साथ मिलकर उज़बेगों का सामना करने की योजना बनाई। इस संयुक्त योजना के कार्यान्वयन के पहले ही 1506 सी ई में सुल्तान हुसैन का देहांत हो गया। हेरात में उत्तराधिकार युद्ध शुरू हुआ। बदिउज़्ज़माँ और मुज़फ्फर हुसैन के द्वैध शासन के बावजूद अव्यवस्था बनी रही। अतः अंतिम तैमूरिद

राज्य पर अधिकार स्थापित होने में देर नहीं थी। इसके बाद जल्द ही 1509 सी ई में शैबानी खाँ ने मोग़लिस्तान के क़ज़ाक़ों के खिलाफ अभियान शुरू किया। अब पूरा का पूरा ट्रांसऑक्सियाना शैबानी खाँ के आधिपत्य में आ गया। शैबानी खाँ द्वारा स्थापित साम्राज्य शैबानी वंश के नाम से जाना गया। तैमूरिद शासकों से उज़बेगों को सत्ता हस्तान्तरण के तात्कालिक कारण निम्नलिखित थेः

- बाद के तैमूर शासकों की व्यक्तिगत अक्षमता,
- उनकी आपसी दुश्मनी,
- उत्तराधिकार के स्पष्ट नियम का अभाव, और
- मजबूत प्रशासन का अभाव।



मानचित्र 4.2: पन्द्रहवीं शताब्दी का फरगाना और उसके आसपास के क्षेत्र

स्रोतः विलियम्स, रशब्रुक एल. एफ. ए., (1918) *एन एम्पायर बिल्डर ऑफ द सिक्सटीन्थ सेंचुरीः ए समरी एकाउन्ट ऑफ द पॉलिटिकल करियर ऑफ ज़हीर उद्-दीन मुहम्मद* (लंदनः लांगमैन्स, ग्रीन एंड कंपनी), पृ. 20

4.5.1 उज़बेगों, ईरानियों और तैमूरिदों के बीच त्रिपक्षीय संघर्ष

खुरासान पर अधिकार स्थापित होने के बाद शैबानिद साम्राज्य और सफ़ावियों की क्षेत्रीय सीमा-रेखा पास आ गयी। शैबानी खाँ महत्वाकांक्षी था, अतः उसने शाह इस्माइल को अपना मातहत बनाने का प्रयास किया, परिणामतः 1510 सी ई में युद्ध हुआ, जिसमें शैबानी खाँ की हार हुई और वह मारा गया। शाह इस्माइल ने न केवल खुरासान पर कब्जा कर लिया, बल्कि बाद में उज़बेगों से ट्रांसऑक्सियाना छीनने में बाबर की मदद भी की। समरकन्दियों ने बाबर का जोरदार स्वागत किया, पर 'विधर्मी' शिया शाह इस्माइल से उसके संबंध को स्वीकार नहीं किया। धीरे-धीरे प्रतिशोध की भावना फैली, जिसे बाबर के लालची अनुयायियों ने और भड़काया और इससे मध्य एशिया में उज़बेगों की स्थिति मजबूत हुई।

4.5.2 उज़बेग सत्ता का उदय तथा पुनरुत्थान

मध्य एशिया से निष्कासन (1510-11) के बाद उज़बेग तुर्किस्तान क्षेत्र में स्थापित हुए, परन्तु उनमें बाबर और शाह इस्माइल की संयुक्त सेना का सामना करने की शक्ति नहीं थी। उज़बेग राजकुमारों में केवल

उबेदुल्लाह ही कुछ महत्वाकांक्षी था। वह शैबानी खाँ का भतीजा था। हालांकि उसके पास स्रोत सीमित थे, परन्तु उसने बाबर को हराकर ट्रांसऑक्सियाना पर कब्जा कर लिया। इसके बाद 1512-13 में धीरे-धीरे उज़बेगों ने बुखारा, समरकन्द और अन्य क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया। ऑटोमन सुल्तान सलीम (1512-20) ने 1514 सी ई में शाह इस्माइल के खिलाफ युद्ध करने के लिए उबेदुल्लाह को आमंत्रित किया। हालांकि उबेदुल्लाह ने सलीम की सहायता नहीं की, परन्तु सलीम ने अपनी सामरिक कुशलता के बल पर शाह इस्माइल को बुरी तरह हराया। 1526 की पानीपत की लड़ाई में बाबर ने इसी युद्ध नीति का अनुसरण किया। उबेदुल्लाह और अब्दुल्ला खाँ शैबानिद साम्राज्य के प्रमुख शासक थे। अब्दुल्लाह खाँ अकबर का समकालीन था। उबेदुल्लाह और अब्दुल्लाह खाँ (इनका शासनकाल क्रमशः 1513-40 और 1565-98 के बीच रहा) ने ईरान के खिलाफ अनेक लड़ाईयां लड़ीं (देखिए **इकाई 6**)।

अस्तरखानिदः अब्दुल्लाह खाँ के देहांत (1598) और उसके छह महीने के बाद उसके एकमात्र पुत्र और उत्तराधिकारी अब्दुल मोमिन की हत्या के बाद से इस राजवंश को अस्तरखानिद के नाम से जाना जाने लगा। रूसी आक्रमण के समय तक उज़बेग साम्राज्य कायम रहा। उपनिवेशवाद के संकट के समय अन्य एशियाई राज्यों के समान यह साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया।

4.5.3 उज़बेग साम्राज्य

उज़बेग ट्रांसऑक्सियाना की राजस्व वसूली के मुख्य आधार युद्ध लूट, नगर कर और व्यापारिक स्रोत थे। कृत्रिम सिंचाई की सहायता से थोड़ी बहुत खेती की जाती थी। परन्तु यह कृषि क्षेत्र इतना कम था कि ज्यादा कर (उपज का आधा) लगाने के बावजूद नगण्य आमदनी होती थी। **रेशम मार्ग** के कारवाँ मार्ग के रास्ते में होने के कारण मध्य युग में ट्रांसऑक्सियाना हमेशा फलता-फूलता रहा। कुछ मंगोल खानों के समय व्यापार मार्ग में परिवर्तन और 1498 में एशिया से यूरोप तक के समुद्री मार्ग की खोज से व्यापार में गिरावट आयी। ऐतिहासिक लेख और व्यापारियों के दस्तावेज इसका प्रमाण हैं। तुर्क-मंगोल परंपरा के लगातार मजबूत होते चले जाने से उज़बेगों के अधीन तैमूरिदों के प्रशासनिक ढाँचे में भी मामूली परिवर्तन आया। सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में धर्मांधता, कट्टरपंथ और सांप्रदायवाद को बढ़ावा मिला। इसी के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र में नक्शबंदी संतों के प्रभुत्व को बढ़ावा मिलने से उज़बेगों के अधीन एक नया आयाम सामने आया।

बोध प्रश्न-2

1) उज़बेगों द्वारा ट्रांसऑक्सियाना पर आधिपत्य के प्रमुख चरणों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

2) तैमूरिदों के पतन के कारणों पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

3) उज़बेगों, ईरानियों और तैमूरों के त्रिपक्षीय संबंधों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

4.6 सफ़ावियों का उद्भवः ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

सफ़ावी साम्राज्य का उदय उसी भौगोलिक क्षेत्र में हुआ जहाँ कभी इलखानिद राज्य हुआ करता था। हलाकू साम्राज्य अपेक्षाकृत लघु रूप में (जलेरिद साम्राज्य) पुनः उभरा, यह मेसोपोटेमिया, अज़रबाइजान और बाद में शीर्वान में भी फैल गया। इलखानिद शासन के अन्य क्षेत्रों पर दो तुर्कमान संघों अक़ क़्युयूनलू (सफेद भेड़) और क़ारा क़्युयूनलू (काली भेड़) का आधिपत्य था। अक़ क़्युयूनलू का मुख्यालय

अमिद था और उनका अधिकार क्षेत्र दियार-ए बक्र तक फैला हुआ था। क़ारा क़्युयूनलू का मुख्यालय अर्जिश (वान झील के पूर्वी किनारे पर) में स्थित था। उनका राज्य उत्तर में एर्ज़े रूम और दक्षिण में मोसूल तक फैला हुआ था। इन दोनों राज्यों में विभिन्न नस्लों के लोग रहते थे, जैसे अरब, आर्मेनिया मूल के लोग, कुर्द तथा अन्य।

4.6.1 अक़ क़्युयूनलू और क़ारा क़्युयूनलू

साहसी योद्धा जहानशाह के नेतृत्व में क़ारा क़्युयूनलू राजवंश वान से लेकर ईरान और खुरासान के रेगिस्तान तक और कैस्पियन सागर से फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था। उन्होंने तैमूरिदों से अपने आप को स्वतंत्र कर लिया था। जहानशाह शियाओं के जनक के रूप में प्रसिद्ध था जबकि अक़ क़्युयूनलू सुन्नी थे। उज़न हसन (1453-78) अक़ क़्युयूनलू राजवंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध बादशाह था, जिसने जहानशाह को हराकर लगभग समस्त ईरान पर अपना अधिकार जमा लिया था। इस प्रकार उसके साम्राज्य की सीमा तैमूरिदों की सीमा के पास आ गयी। ऑटोमन शासक मुहम्मद द्वितीय (1451-1481) उसे शक्तिशाली शासन मानता था, क्योंकि उसका अनातोलिया, मेसोपोटेमिया, अज़रबाइजान और फारस के संसाधनों पर अधिकार था। इसके बावजूद 1473 में अपने उत्कृष्ट तोपखाने के बल पर **ऑटोमन** शासक ने उज़न हसन को हरा दिया। उज़न हसन की मौत (1478) के समय उसका तुर्कमान साम्राज्य फरात में उच्च इलाकों से लेकर बृहद् लवणीय रेगिस्तान तक और दक्षिण ईरान में किरमान प्रांत और ट्रांसऑक्सियाना से मेसोपोटेमिया और फारस की खाड़ी तक फैला हुआ था।

उज़न हसन खाँ की बहन ख़ादिजा बेगम की शादी एक उद्यमी और प्रभावशाली शेख जुनैद (1447-60) के साथ हुई। वह सर्वाधिक लोकप्रिय सूफी संप्रदाय सफ़ाविया का प्रमुख रहनुमा था और अरदबिल में उसका मुख्यालय था। शेख जुनैद शेख ज़ाहिद (1218-1301) के दामाद और शिष्य शेख सफीउद्दीन इशाक (1252-1334) का उत्तराधिकारी था। सफीउद्दीन इशाक (जिसके नाम पर सफ़ावी वंश का नामकरण हुआ) ने न केवल शेख ज़ाहिद की सूफी परंपरा को ग्रहण किया बल्कि 1301 सी ई में अरदबिल में खुद अपना सफ़ाविया संप्रदाय स्थापित किया। उनकी लोकप्रियता के कारण शेख सफीउद्दीन और उसके उत्तराधिकारी हमेशा क़ारा क़्युयूनलू सुल्तानों की ईर्ष्या के पात्र बने रहे।

शेख जुनैद सफ़ावी संप्रदाय का पहला आध्यात्मिक दिग्दर्शक था। क़ारा क़्युयूनलू शासक से टक्कर लेने के लिए उसने 10,000 सैनिकों का सैन्यबल इक्ट्ठा किया। उसने संप्रदाय में लड़ाकूपन का समावेश किया और सूफी के स्थान पर *ग़ाज़ी* (आस्था के योद्धाओं) को प्रतिस्थापित किया। 1455 में उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र और उत्तराधिकारी हैदर ने अपने मामू अमीर हसन बेग की लड़की से शादी की, जो जहानशाह को मारकर अज़रबाइजान और दोनों ईराकों का बादशाह बन बैठा था। हैदर के तीन पुत्र हुए, सुल्तान अली, इब्राहिम और इस्माइल। सबसे छोटा पुत्र इस्माइल (जन्म 1487) सफ़ावी साम्राज्य का संस्थापक बना। सुल्तान हैदर ने खून के रंग से बारह पंखों वाली (बारह इमामों के प्रसंग में) एक टोपी बनवायी और अपने सभी अनुयायियों को इसी तरह की टोपी बनवाने का हुक्म दिया। इस कारण से उन्हें किज़िलबाश (लाल सिर वाला) कहा जाने लगा।

चर्क और दाघिस्तान के कबीलों पर हैदर ने चढ़ाई की। रास्ते में ही 1488 में, याकूब मिर्ज़ा के दामाद और शीर्वान के शासक फारूख़ यासर से हुए युद्ध में वह मारा गया। हालांकि अपनी बहन हलीमा बेगी आग़ा का ख्याल करते हुए उसने हैदर के तीनों भाईयों की जिंदगी बख्श दी परन्तु उन्हें इस्तखार के किले में कैद कर दिया। जब याकूब मिर्ज़ा के बेटों बैसुनघर और रूस्तम मिर्ज़ा में लड़ाई छिड़ गयी तो रूस्तम मिर्ज़ा ने सुल्तान अली की मदद माँगी। जैसे ही रूस्तम मिर्ज़ा को सफलता मिली, उसने ईर्ष्यावश सुल्तान अली को मौत के घाट उतार दिया। सुल्तान अली को खतरे का आभास हो गया था अतः उसने इस्माइल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था (1494)। जुलाई 1497 में रूस्तम मिर्ज़ा की मृत्यु तक इस्माइल को कई प्रकार की दिक्कतों का सामना करना पड़ा। रूस्तम मिर्ज़ा की मृत्यु के बाद अरदबिल में गृह-युद्ध छिड़ गया। इस्माइल ने इस मौके का फायदा उठाया और लोगों को अपने बिखरे साथियों को एकत्रित करने के लिए दौड़ाया। क़राच इलियास से सैनिक सहायता प्राप्त कर और तुर्कमान कबीले के अपने 7000 साथियों की मदद से उसने 1500 में जॉरजिया को अपने अधीन कर लिया और पर्याप्त युद्ध-लूट का माल प्राप्त किया। पन्द्रह साल की उम्र में गुलिस्तां के किले

में उसका मुकाबला शीर्वान के फारूख यासर के साथ हुआ। उसने उसे मारकर बाकू पर आक्रमण किया। 1501 सी ई में अक़ क़्युयूनलू पर इस्माइल ने विजय प्राप्त की, तुर्कमान की राजधानी तबरीज़ में प्रवेश किया और शाह की उपाधि के साथ गद्दी पर बैठा।

4.6.2 तुर्कमान और सफ़ावी

सफ़ावियों (नया राजवंश, जो ईरान में 1736 तक कायम रहा) की शक्ति के आधार शामलू, रूमलू, तक्कालू ज़ुल्क़दार, अफशार, काचर, उस्तजलू और वारसक़, आदि तुर्कमान कबीले थे। अरदबिल संप्रदाय के तुर्कमान अनुयायी सफ़ावियों के सहयोग के आधार थे क्योंकि सफ़ावी शुद्ध तुर्कमान नहीं थे। धार्मिक एकबद्धता तथा सामाजिक और राजनीतिक कारणों से तुर्कमान ईरानी शाह की ओर आकृष्ट हुए थे। अपने प्रजातीय और धार्मिक विभेदों के कारण एशिया माइनर या मध्य एशिया के तुर्कमान अपने को ऑटोमन या उज़बेग साम्राज्य से नहीं जोड़ पाये थे। दूसरी तरफ ऑटोमन या उज़बेग शासन में उनके लिए कुछ खास आकर्षण भी नहीं था। ईरानी साम्राज्य में तुर्कमानों को विशिष्ट महत्व प्राप्त था। आरंभ में सभी नागरिक, सैन्य और प्रशासनिक पदों पर उन्हीं की नियुक्ति हुई थी। सफ़ावियों ने शासन और प्रशासन के क्षेत्र में तबरीज़ के शासकों का अनुकरण किया। शाह इस्माइल को तुर्कमान कबीलों की पूर्ण निष्ठा प्राप्त थी और इससे उसे काफी बल मिला था। शाह इस्माइल ने न केवल ईश्वर की परिकल्पना की परंपरा (अपने को धार्मिक और सांसारिक सत्ता का प्रतीक बताकर) का सहारा लिया बल्कि अपने दादा उज़ुन हसन के संबंध का सहारा लेकर उसने अपने शासन को वैधता प्रदान की। अक़ क़्युयूनलू के साथ शाह इस्माइल के संबंध का भी महत्वपूर्ण योगदान था। निस्संदेह क़ारा क़्युयूनलू और अक़ क़्युयूनलू ने ईरान की पुरातन राजनीतिक और सांस्कृतिक परंपरा का निर्वाह करते हुए नये राजवंश की स्थापना के लिए पहले से ही कुछ माहौल बनाया था।

4.6.3 शियावाद और सफ़ावी

नये राजवंश ने कुछ बदला हुआ सैन्य और राजनैतिक ढाँचा खड़ा किया, शिया धर्म को राज-धर्म बनाया और ईरानी इस्लाम (Persian Islam) का ईरानीकरण (Iranicisation) किया अर्थात् 'ईरानवासियों' को एक नवीन सांस्कृतिक अस्मिता प्रदान की। सफ़ावी राज्य का जन्म धर्म और राजनीति की कोख से हुआ। अतः धर्म और राजनीति का आपस में ताल-मेल स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यह सुन्नी ऑटोमन और उज़बेग राज्यों के सांप्रदायिकतायुक्त दृष्टिकोण से काफी मिलता-जुलता है। शाह इस्माइल को कशान और कुम से भरपूर समर्थन मिला। यहाँ शिया लोगों का वर्चस्व था। दूसरे स्थानों पर (जैसे सुन्नी बगदाद या हेरात में) उसके अभियान को प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा।

4.7 सफ़ावी और उज़बेग-ऑटोमन संघर्ष

शिया 'सफ़वियों' (मुस्लिम विश्व में सर्वोच्चता प्राप्ति के नये दावेदार) की उभरती शक्ति के कारण ऑटोमन, ईरान को अपने अधिकार में नहीं ले सके। वस्तुतः सोलहवीं शताब्दी में ईरानी-उज़बेग और ईरानी-ऑटोमन युद्ध आम बात हो गयी थी।

1514 में चलदीरान में हुए युद्ध में ऑटोमन शासक सलीम (1512-20) के हाथों परास्त होने के बाद शाह इस्माइल (1502-1524) ने हालांकि कोई युद्ध नहीं लड़ा परन्तु उसके पुत्र और उत्तराधिकारी शाह तहमस्प (1524-76) को लगातार उज़बेगों और ऑटोमनों का सामना करना पड़ा। खुरासान पर उज़बेगों ने पाँच बार (1524-38) बड़े हमले किये और अज़रबाइजान पर ऑटोमनों ने चार बार (1534-35, 1548-1553) पूरी तैयारी के साथ आक्रमण किया, परन्तु वे शाह तहमस्प को परास्त नहीं कर सके, परन्तु उसने ऑटोमनों के साथ अमस्या के संधि पत्र (29 मई 1555) पर हस्ताक्षर किए। इन बाहरी खतरों के अलावा उसे कुछ अंदरूनी समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। उदाहरण के लिए, तुर्कमान और ईरानियों (इनका मूल, संस्कृति और रीति-रिवाज एक दूसरे से अलग थे), जिनमें प्रजातिगत और भाषागत विभिन्नता थी, के अंतर्गत जॉरजिया मूल के लोगों और सिरकासियन मूल के लोगों का भी समावेश हो गया। इससे दरबार के षड्यंत्र और भी बढ़ गये।

भारत के मुगलों से सफ़वियों के राजनयिक संबंध थे (देखिए **इकाई 6**), इसके साथ-साथ उन्होंने रूस और पुर्तगाल से भी अच्छे संबंध बनाए रखने का प्रयास किया।

शाह तहमस्प के अलावा शाह अब्बास I (1588-1629, जिसके शासनकाल को सफ़ावी सत्ता का स्वर्ण युग माना जाता है), शाह अब्बास II (1642-66) और शाह सफी अन्य महत्वपूर्ण सफ़ावी शासक थे। शाह अब्बास I के नेतृत्व में सफ़ावी राज्य धीरे-धीरे धार्मिक और सैन्य आधार को पीछे छोड़ते हुए पूर्व के पूर्ण विकसित साम्राज्य में विकसित हुआ। उसने कई प्रकार के प्रशासनिक और सैन्य सुधार लागू किए। निष्ठावानों (*गुलामों*) का एक नया समुदाय कायम किया गया, जिन्हें कई महत्वपूर्ण पद प्रदान किए गए। रॉबर्ट शरले को 'तुर्कों के खिलाफ मास्टर जनरल' नियुक्त किया गया था और उसी के सुझाए हुए ढाँचे पर एक मज़बूत सेना का संगठन किया गया था जिसे केन्द्र से ही वेतन दिया जाता था। इसके अतिरिक्त 500 बंदूकों के तोपखाने का एक बल तैयार किया गया।

बोध प्रश्न-3

1) शाह अब्बास I की उपलब्धियों की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) क़ारा क़्युयूनलू और अक़ क़्युयूनलू पर कुछ पक्तियाँ लिखिए।

.....

.....

.....

3) सफ़वियों के आरंभिक इतिहास पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

4) सफ़ावी साम्राज्य में तुर्कमानों के महत्व को रेखांकित कीजिए।

.....

.....

.....

4.8 मध्य एशिया तथा बाबर[1]

15वीं शताब्दी के अंत से तैमूर शासकों की शक्ति का पतन होने लगा था। इस समय तक उज़बेगों ने शैबानी खाँके अधीन ट्रांसऑक्सियाना में अपनी स्थिति मजबूत करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। इसी समय के लगभग शाह इस्माइल के नेतृत्व में ईरान में सफावियों का एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उदय हुआ। जबकि और आगे पश्चिम की ओर ऑटोमन तुर्कों का प्रभुत्व था। लगभग संपूर्ण ट्रांसऑक्सियाना तथा खुरासान पर शैबानी खाँ ने प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। अंततः 1510 में ईरान के शाह इस्माइल ने शैबानी खाँ को पराजित कर दिया। परंतु थोड़े समय बाद ही (1512) ऑटोमन सुल्तान ने शाह इस्माईल को पराजित कर दिया। इस प्रकार उज़बेगों को संपूर्ण ट्रांसऑक्सियाना का स्वामी बनने का पुनः एक बार अवसर प्राप्त हो गया।

बाबर 12 वर्ष की आयु में फ़रगाना (ट्रांसऑक्सियाना की एक मामूली रियासत) की गद्दी पर 1494 में सत्तारूढ़ हुआ। किंतु बाबर को यह उत्तराधिकार सरलता से प्राप्त नहीं हुआ था। मंगोल खान के साथ-साथ तैमूर राजकुमार, विशेषकर समरकंद का सुल्तान अहमद मिर्ज़ा, बाबर का चाचा, दोनों फ़रगाना में रुचि रखते थे। इसके अतिरिक्त बाबर को असंतुष्ट कुलीनों का भी सामना करना पड़ा। इन सभी विपत्तियों के बावजूद बाबर ने मध्य एशिया में अपनी स्थिति को मजबूत करने तथा समरकंद पर दो बार (1497 एवं 1500) अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। लेकिन इस पर वह लंबे समय

[1] **यह भाग इग्नू के पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारतः 16वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य तक,* के खंड 2, इकाई 5, भाग 5.3 से लिया गया है। इस भाग की लेखिका डॉ. मीना भार्गव, इन्द्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली हैं।**

तक अधिकार बनाये रखने में असफल रहा। तैमूरिद सत्ता के चार केंद्रों में से एक खुरासान पर शैबानी खाँ के द्वारा अधिकार (1507) कर लिए जाने के कारण बाबर के लिए मध्य एशिया के द्वार अंततः बंद हो गए और अब उसके सम्मुख काबुल के अलावा कोई विकल्प शेष न रहा क्योंकि काबुल में परिस्थितियाँ उसके लिए सबसे अधिक अनुकूल थीं। इसके शासक उलुग़ बेग मिर्ज़ा की मृत्यु पहले ही (1501) हो चुकी थी। बाबर ने 1504 में काबुल को अपने अधीन कर लिया। लेकिन बाबर इस समय तक मध्य एशिया पर शासन करने के स्वप्न को त्याग नहीं सका था। शाह इस्माइल सफ़ावी की मदद से वह समरकंद पर अधिकार (1511) करने में सफल हो गया। किंतु 1512 में इस्माइल के पराजित हो जाने एवं उज़बेगों के उत्थान से बाबर के पास काबुल में अपनी स्थिति को मजबूत करने के अलावा कोई विकल्प शेष न रहा।

इस तरह मध्य एशिया की स्थिति ने बाबर पर दबाव डाला एवं उसको यह मानने के लिए बाध्य किया (1521 के बाद) कि वह मध्य एशिया में साम्राज्य स्थापित करने की आशा का परित्याग कर दे और भारत की ओर देखे। जैसा कि अबुल फज़ल लिखता है, भारत के संपन्न संसाधन एवं अफगानिस्तान की जर्जर आर्थिक स्थिति भी बाबर के लिए आकर्षण का कारण रहे होंगे। सिकंदर लोदी की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली सल्तनत की राजनैतिक स्थिति ने बाबर को लोदी साम्राज्य में व्याप्त राजनैतिक असंतोष तथा अराजकता का विश्वास दिलाया। राणा सांगा एवं पंजाब के गवर्नर दौलत खाँ लोदी द्वारा बाबर को दिए गए निमंत्रण ने बाबर की लालसाओं को और बढ़ाया। संभवतः तैमूर की संपत्ति पर पैतृक अधिकार ने भी उसके आक्रमण की पृष्ठिभूमि तैयार की। 1519 में भीरा पर अधिकार करने के बाद बाबर ने इब्राहिम लोदी से पश्चिमी पंजाब की माँग की जो कभी उसके चाचा उलुग़ बेग मिर्ज़ा के अधिकार में था। इस प्रकार बाबर के पास भारत आक्रमण के लिए कारण एवं अवसर दोनों थे।

बोध प्रश्न-4

1) मध्य एशिया में बाबर द्वारा जिन आरंभिक समस्याओं का सामना करना पड़ा, उसकी चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) बाबर को क्यों मध्य एशिया में अपनी महत्वाकांक्षाओं का त्याग करना पड़ा?

.....

.....

.....

4.9 सारांश

इस इकाई में हमने मुगलों के मूल स्थान और उनके पूर्ववर्ती इतिहास को समझने की कोशिश की। भारत के दो प्रमुख पड़ोसी राज्यों – मध्य एशिया में ट्रांसऑक्सियाना और ईरान – की भौगोलिक रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। उज़बेग और सफ़ावी के क्रमशः ट्रांसऑक्सियाना और ईरान साम्राज्यों के प्रजातीय और राजनीतिक पूर्ववर्ती इतिहास की जानकारी दी गयी है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इन दोनों साम्राज्यों का अध्ययन किया गया है। मुगलों का उद्भव मध्य एशिया में हुआ था और तीन दशकों तक इस क्षेत्र पर उन्होंने शासन किया। इस प्रकार मध्य एशियाई इतिहास की पृष्ठभूमि में ही भारत में मुगल शासन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक आधार और प्रकृति को अच्छी तरह समझा जा सकता है।

4.10 शब्दावली

खानेत	यह *खान* के पद और अधिकार क्षेत्र को प्रतिबिंबित करता है। मंगोल *खान*, एक खास क्षेत्र का राजनीतिक और प्रशासनिक मुखिया हुआ करता था

खानाबदोश जीवन कबीलों के बीच प्रचलित जीवन शैली, जिसमें वे किसी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहते और भोजन पानी की खोज में इधर-उधर भटकते रहते हैं

ऑटोमन यह अरबी शब्द उस्मान का विकृत अंग्रेजी रूप है। ऑटोमन तुर्क थे, जिनकी शक्ति 15वीं शताब्दी के दौरान तेजी से बढ़ी। 1453 में कुस्तुनतुनिया (कान्सटेन्टिनोपल) पर अधिकार प्राप्त करने के बाद एशिया माइनर पर उनका पूरा कब्जा हो गया

पशुपालन जीवन शैली यह जीवन शैली भी कबीलों के बीच पनपी। इसमें जीवन का मुख्य आधार पशुपालन था। इस जीवन शैली से खानाबदोश जीवन शैली का आरंभ हुआ

शिया यह मुसलमानों का एक संप्रदाय है, जो अपने को पैगम्बर मुहम्मद का सीधा उत्तराधिकारी मानते हैं और यह भी मानते हैं कि मुसलमान समुदाय को धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व देने का अधिकार उन्हें पैगम्बर से मिला है। यह शब्दावली शियात अली के नाम पर आधारित है। यह हजरत अली (पैगम्बर मुहम्मद के चचेरे भाई और उनकी बेटी फातिमा के पति) के दल के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला अरबी भाषा का शब्द है

सुन्नी मुसलमानों का एक संप्रदाय, जो शियाओं के दावे को स्वीकार नहीं करता। सुन्नी शब्द अरबी सुन्नत से निकला है। सुन्नियों को *कुरान* के बाद केवल *हदीस,* जो *शरिअत* (इस्लामी कानून) का स्रोत है, में वर्णित पैगम्बर मुहम्मद के कथन और उपदेश ही मान्य हैं

रेशम मार्ग रेशम मार्ग का नाम पूर्व (चीन) से पश्चिम (भूमध्यसागर) तक जाने वाले आकर्षक चीनी रेशम व्यापार के नाम पर पड़ा। ज़ियान (सियान, चीन में) से शुरू होकर, टकला मकरान रेगिस्तान से गुजरते हुए, पामीर को पार करते हुए, अफगानिस्तान होत हुए यह लेवेंट (भूमध्यसागर) तक पहुँचता है। यह मार्ग 130 बी सी ई में शुरू हुआ जब हान राजवंश (206 बी सी ई-220 सी ई) ने पश्चिम के साथ अपने व्यापार संबंध खोले। यह मार्ग 1453 तक उपयोग में रहा, जब अंतत ऑटोमन शासकों ने चीन के साथ व्यापार का बहिष्कार कर मार्ग को बंद कर दिया

तुर्कमान समूह एशिया माइनर और मध्य एशिया के कबीले

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखिए भाग 4.1 आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

   i) मुगल विजेता मध्य एशिया से आए और उन्होंने वहाँ शासन किया था;

   ii) भारत में मुगल शासन पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा;

   iii) इस दृष्टि से मध्य एशिया के संबंधों, आदि का अध्ययन प्रासंगिक है।

2) देखिए भाग 4.2 आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

   i) अरब विजेताओं ने अंदरूनी एशिया अर्थात् तूरान का नाम ट्रांसऑक्सियाना रख दिया, क्योंकि यह सीर और अमू नामक दो नदियों के बीच स्थित था;

ii) ईरान में पहाड़ियों की श्रृंखला एशिया और कॉकेसस से लेकर पंजाब के समतल इलाके तक फैली थी, जिसे ईरानी पठार के नाम से भी जाना जाता है, आदि।

3) देखिए भाग 4.3 आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

i) तूरान के उज़बेग चंगेज के बड़े पुत्र के वशंज थे;

ii) उन्होंने अपना नाम उज़बेग खाँ से ग्रहण किया, आदि।

बोध प्रश्न-2

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

तैमूर साम्राज्य में फैली अव्यवस्था का लाभ उठाकर उज़बेगों ने तैमूरों से बुखारा और समरकन्द छीन लिया। उज़बेगों ने बाबर और उसके मामू की संयुक्त फौज को हराकर फरगाना, कुनदूज, बल्ख, मेमना और फरयाब पर कब्जा कर लिया। हेरात में फैली अव्यवस्था का लाभ उठाकर उज़बेगों ने वहाँ भी कब्जा जमा लिया। देखिए भाग 4.4 और 4.5

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

बाद के तैमूर शासकों की व्यक्तिगत अक्षमता, आपसी वैमनस्य, आदि। देखिए भाग 4.5

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

खुरासान पर विजय प्राप्त करने के बाद उज़बेगों की सीमा सफ़ावी ईरान के नज़दीक आ गयी। इस इलाके में उज़बेगों ने अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करनी चाही, परन्तु वे ईरानियों द्वारा दबा दिए गए, आदि। देखिए उपभाग 4.5.1

बोध प्रश्न-3

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

अक़ क़्युयूनलू (सफेद भेड़) और क़ारा क़्युयूनलू (काली भेड़) तुर्कमान राज्यसंघ थे, अक़ क़्युयूनलू की राजधानी आमिद में और क़ारा क़्युयूनलू का मुख्यालय अर्जिश में स्थित था, आदि। देखिए उप-भाग 4.6.1

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

प्रमुख अक़ क़्युयूनलू नेता उज़ुन हसन की बहन की शादी शेख जुनैद के साथ हुई थी, जो सफ़ावी नाम के एक सूफी संप्रदाय का नेता था। इसका मुख्यालय अरदबिल में था। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी हैदर ने क़ारा क़्युयूनलू के शासक को मार डाला और अज़रबाइजान का शासक बन बैठा, उसके छोटे पुत्र इस्माइल ने सफ़ावी साम्राज्य की स्थापना की, आदि। देखिए भाग 4.6 और उप-भाग 4.6.1

3) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

तुर्कमान कबीले सफ़ावी साम्राज्य के प्रमुख आधार-स्तम्भ थे, उन्होंने शासक वर्ग का आधार निर्मित किया, आदि। देखिए उप-भाग 4.6.2

4) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

शाह अब्बास I के समय में सफ़ावी राज्य एक साम्राज्य के रूप में उभरा, उसने कई प्रशासनिक और सैन्य सुधार लागू किए, आदि। देखिए भाग 4.7

बोध प्रश्न-4

1) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिए:

चर्चा करें कि मंगोल खान तथा तैमूरिद राजकुमार, विशेष रूप से समरकंद का सुल्तान अहमद मिर्ज़ा, दोनों फरगाना पर नियंत्रण करना चाहते थे। देखें भाग 4.8

2) आपके उत्तर में निम्नलिखित बातें शामिल होनी चाहिएः

चर्चा करें, शैबानी खाँ की बढ़ती हुई शक्ति तथा उसके द्वारा खुरासान का अधिग्रहण तथा उज़बेगों की लगातार बढ़ती ताकत ने बाबर के लिए मध्य एशिया में कोई विकल्प नहीं छोड़ा। अंततः उसे काबुल और भारत की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ा। देखें भाग 4.8

4.12 संदर्भ ग्रंथ

कॉस्मो, निकोला दी, एलन जे. फ्रेंक, और पीटर बी. गोल्डन, (2009) *द कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इनर एशियाः द चिंगिज़िड ऐज* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस).

डेल, स्टीफन फ्रेडरिक, (2018) *बाबरः तिमुरिद प्रिंस एंड मुगल एम्परर्स, 1484-1530* (नई दिल्लीः कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय प्रेस).

डेल, स्टीफन फ्रेडरिक, (2004) *द गार्डन ऑफ द ऐट पैराडाइसः बाबर एंड द कल्चर ऑफ एम्पायर इन सैंट्रल एशिया, अफगानिस्तान एंड इंडिया (1483-1530)* (लायडनः ब्रिल).

त्रिपाठी, आर. पी. (1963) *राइज एंड फॉल ऑफ द मुगल एम्पायर* (नई दिल्लीः सैंट्रल बुक डिपो).

विलियम्स, रशब्रुक, एल. एफ., (1918) *एन एम्पायर बिल्डर ऑफ द ऐटीन्थ सेंचुरीः ए समरी एकाउन्ट ऑफ द पॉलिटिकल करियर ऑफ ज़हीर-उद दीन मुहम्मद* (लंदनः लांगमैन्स, ग्रीन एंड कंपनी).

4.13 शैक्षणिक वीडियो

किरगिस्तानः व्हेअर डिड द मुगल्स ऑफ इंडिया कम फ्रॉम?
https://www.youtube.com/watch?v=MYWVuCHq7Z0

द तिमुरिद्स एंड बाबरः द मुगल एम्पायर I
https://www.youtube.com/watch?v=V2AVVuB1ws8

इकाई 5 अफगान राज्य*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 लोदी साम्राज्य

5.2.1 सिकंदर लोदी

5.2.2 इब्राहिम लोदी

5.3 प्रशासनिक ढाँचा

5.3.1 राजत्व की प्रकृति

5.3.2 प्रशासन व्यवस्था

5.4 भारत में मुगल शासन की स्थापना

5.4.1 बाबर तथा राजपूत राज्य

5.4.2 बाबर तथा अफगान स्वायत्त सरदार

5.5 हुमायूँ: 1530-1540

5.5.1 बहादुर शाह तथा हुमायूँ

5.5.2 पूर्वी अफगान तथा हुमायूँ

5.5.3 हुमायूँ एवं उसके भाई

5.6 भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापनाः 1540-1555

5.7 भारत में मुगल शासन की पुनःस्थापना

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.11 संदर्भ ग्रंथ

5.12 शैक्षणिक वीडियो

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- सिकंदर लोदी की राजनीतिक सत्ता की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे,
- इब्राहिम लोदी की समस्याओं का उल्लेख कर सकेंगे,
- मुगल साम्राज्य की स्थापना में बाबर की आरंभिक कठिनाइयों की चर्चा कर सकेंगे,

* प्रो. इक्तिदार हुसैन सिद्दीकी और डॉ. राजीव शर्मा, सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़; और डॉ. मीना भार्गव, इतिहास विभाग, इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली। यह इकाई इग्नू के पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारतः 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक,* खंड 1, इकाई 2, खंड 2, इकाई 5, तथा खंड 4, इकाई 14 से ली गई है।

- लोदी सुल्तानों के अधीन प्रशासनिक ढाँचे पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- लोदी शासकों के विरुद्ध बाबर के सफलतम अभियानों की चर्चा कर सकेंगे,
- स्थानीय शासक वर्ग, विशेष रूप से अफगानों तथा राजपूतों, के साथ मुगलों के संघर्ष एवं उनकी विजय के विषय में समझ सकेंगे,
- शेरशाह द्वारा हुमायूँ की पराजय के कारणों को रेखांकित कर सकेंगे,
- शेरशाह के उत्थान तथा सुदृढ़ीकरण के बारे में जान सकेंगे, और
- उन परिस्थितियों तथा कार्यों को, जिनके द्वारा हुमायूँ के नेतृत्व में मुगल शासन की पुनः स्थापना हुई, समझ सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

उत्तर भारत में 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राजनीतिक अव्यवस्था और अनिश्चितता का माहौल था। इस काल में कई शासक राजवंश उभरे और विभिन्न शासक वर्गों का उदय हुआ। भारत में मुगलों का आगमन इसमें सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। इसने आने वाले 200 वर्षों तक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था और समाज को काफी हद तक प्रभावित किया। इस इकाई में हम 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। यहाँ हमारा उद्देश्य आपको उस राजनीतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि से परिचित कराना है, जिसमें शक्तिशाली मुगल साम्राज्य ने भारत में अपने को स्थापित किया।

सबसे पहले हम इस काल में हुई राजनीतिक गतिविधियों की चर्चा करेंगे। हम अपनी बात अफगानों के लोदी राजवंश से शुरू करेंगे। तत्पश्चात् हम देखेंगे कि किस प्रकार मुगलों ने अफगानों को हराया और अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित की। इसके बाद अफगानों द्वारा मुगलों को पदस्थ करने का मुद्दा सामने आएगा। इस इकाई के अंत में हुमायूँ की वापसी और सत्ता की पुनर्स्थापना की चर्चा की जाएगी। हमें आशा है कि यह इकाई मुगलकालीन राजनीति को समझने में सहायक होगी। यहाँ मुगल सत्ता को उखाड़ फेंकने के अफगान प्रयत्नों का भी विवरण किया गया है। अफगान शासन का संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया गया है। यह इकाई मुख्यतः बाबर तथा हुमायूँ के नेतृत्व में किए गए क्षेत्रीय प्रसार का विवरण प्रस्तुत करती है। मुगल शासन के संगठनात्मक पक्षों का विवरण आगामी इकाइयों में किया जाएगा।

5.2 लोदी साम्राज्य

15वीं शताब्दी का अंत होते-होते बहलोल लोदी ने दिल्ली में लोदी राजवंश की स्थापना सुदृढ़ रूप से कर दी थी। उसने उत्तर भारत के बड़े हिस्से को अपने कब्जे में ले लिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र सिकंदर लोदी गद्दी पर बैठा।

5.2.1 सिकंदर लोदी

16वीं शताब्दी में सुल्तान सिकंदर लोदी के नेतृत्व में उत्तर भारत में लोदी साम्राज्य उत्कर्ष पर पहुंच गया। 1496 में जौनपुर के भूतपूर्व शासक हुसैन शर्की को दक्षिण बिहार से खदेड़ दिया गया और उनके राजपूत अमीर सहयोगियों को या तो समझौते के लिए मजबूर कर दिया गया या परास्त कर दिया गया। उनकी *ज़मींदारियों* को या तो सुल्तान के सीधे नियंत्रण में ले लिया गया या उनका दर्जा अधीनस्थ राज्य का हो गया। इसी प्रकार से सुल्तान की सत्ता को चुनौती देने वाले अफगान और गैर-अफगान अमीरों को दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों से खदेड़ दिया गया। 16वीं शताब्दी के प्रथम दशक में धौलपुर पर कब्जा होने के बाद राजपूताना और मालवा प्रदेशों में अफगान शासन के विस्तार का रास्ता प्रशस्त हो गया। नरवर और चंदेरी के किलों को जीत लिया गया। नागौर के ख़ानज़ादाओं ने 1510-1511 में लोदी सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली। संक्षेप में, संपूर्ण उत्तर भारत, उत्तर-पश्चिम में पंजाब से लेकर पूर्व में उत्तर-बिहार के सारन और चंपारन तक और चंदेरी से लेकर दिल्ली के दक्षिण तक का क्षेत्र लोदी साम्राज्य की परिधि में आ गया था।



मानचित्र 5.1: भारत लगभग 1500 सी ई में

स्रोत: ई. एच. आई.-04: *भारत: 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक*, खंड 1, इकाई 2, पृ. 20

5.2.2 इब्राहिम लोदी

अपने पिता के विपरीत, सुल्तान इब्राहिम लोदी (1517-1526) को 1517 में गद्दी पर बैठते ही अफगान अमीरों की दुश्मनी का सामना करना पड़ा। उसने अपने को शक्तिशाली अमीरों से घिरा पाया, जो अपनी शक्ति बढ़ाने के चक्कर में केंद्रीय सत्ता को कमजोर बनाना चाहते थे। उसके पिता को अपने भाइयों

व संबंधियों से लड़ना पड़ा था। इस लड़ाई में उन अमीरों ने उसके पिता का समर्थन किया, जो राजकुमारों को समृद्ध प्रांतों से हटाना चाहते थे। सुल्तान सिकंदर की मृत्यु के बाद अमीरों ने सुल्तान इब्राहिम लोदी और उसके छोटे भाई राजकुमार जलाल खाँ लोदी (कालपी का गवर्नर) के बीच साम्राज्य का बंटवारा करने का निर्णय लिया।

सुल्तान इब्राहिम को उनके द्वारा यह बंटवारा मानने के लिए मजबूर किया गया जिससे स्वाभाविक रूप से केंद्र कमजोर हुआ। कुछ समय बाद, ख़ान-खानान नुहानी जैसे बुजुर्ग अमीरों ने, जो नए शासक को नज़राना पेश करने आए थे, बंटवारे के समर्थकों की आलोचना की। उन्होंने कहा कि यह विभाजन साम्राज्य के लिए घातक है। उन्होंने सुल्तान से विभाजन को निरस्त करने का आग्रह किया। उनके सुझाव पर सुल्तान इब्राहिम ने वरिष्ठ अमीरों को राजकुमार जलाल के पास भेजा। उनका उद्देश्य राजकुमार को अपने दावे को वापस करने के लिए और अपने बड़े भाई को सुल्तान के रूप में स्वीकार करने के लिए राज़ी करना था। ये प्रयत्न असफल रहे और इससे उत्तराधिकार का संकट उत्पन्न हो गया।

इस मोड़ पर अपने भाई की अपेक्षा सुल्तान इब्राहिम अधिक शक्तिशाली प्रतीत हो रहा था। अतः पुराने अमीर उससे जुड़े रहे। हालांकि कड़ा के गवर्नर आज़म हुमायूँ सरवानी और उसके पुत्र फतह खाँ सरवानी जैसे कुछ अपवाद भी थे। वे कुछ देर के लिए ही सही, पर जलाल खाँ से जुड़े रहे। जब सुल्तान ने व्यक्तिगत रूप से उनके विरुद्ध मार्च किया तो दोनों ने जलाल खाँको छोड़ दिया और सुल्तान से जा मिले।

सुल्तान ने आज़म हुमायूँ सरवानी को ग्वालियर के राजा विक्रमजीत के खिलाफ युद्ध करने के लिए भेजा क्योंकि जलाल खाँ ने वहाँ शरण ले रखी थी। जलाल खाँ ग्वालियर से मालवा की ओर भागा, पर वह गोंडों द्वारा पकड़ा गया और उसे बंदी बनाकर सुल्तान के पास आगरा भेज दिया गया। लेकिन ग्वालियर से उसके भागने पर सुल्तान को अपने पुराने अमीरों पर शक होने लगा। आज़म हुमायूँ को बुलाया गया और उसे कैदखाने में डाल दिया गया। ग्वालियर के राजा ने अमीरों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और सुल्तान की सेवा में शामिल होने के लिए तैयार हो गया। उसे *इक्ता* के रूप में शमसाबाद (फर्रुखाबाद ज़िला) का इलाका दिया गया। इसी समय प्रतिष्ठित ***वज़ीर*** मियाँ भुआ पर भी सुल्तान का विश्वास उठ गया और उसे कैद कर लिया गया। पुराने अमीरों को कैद किए जाने से पूर्व क्षेत्र में विद्रोह की लहर फैल गई।

सुल्तान ने अपने विश्वासपात्रों को दरबार में महत्वपूर्ण पद प्रदान किए और अन्य को प्रांतों का गवर्नर बनाकर भेजा। इसके परिणामस्वरूप पुराने अमीरों को अपने भविष्य की चिंता होने लगी और वे प्रांतों में अपनी शक्ति मजबूत करने लगे। बिहार का शक्तिशाली गवर्नर दरिया खाँ नूहानी पूर्वी क्षेत्र के असंतुष्ट अमीरों का रहनुमा बन गया। लगभग इसी समय बाबर ने भेरा ***सरकार*** पर कब्जा जमा लिया और सतलज पार पंजाब का सर्वाधिक शक्तिशाली गवर्नर दौलत खाँ लोदी उसे मुक्त कराने में सफल नहीं हुआ। दौलत खाँ को दरबार में पेश होने का हुक्म मिला, पर उसने इससे इंकार कर दिया और लाहौर में सुल्तान के खिलाफ बगावत कर दी। उसने सुल्तान इब्राहिम के चाचा आलम खाँ लोदी (बलहोल लोदी का बेटा) को भी आमंत्रित किया और उसे सुल्तान अलाउद्दीन के नाम से नया सुल्तान घोषित कर दिया। इन्होंने सुल्तान इब्राहिम के खिलाफ काबुल के शासक बाबर के साथ संधि की। इब्राहिम लोदी के खिलाफ राणा संग्राम सिंह और बाबर के बीच भी लगभग संधि की सहमति हो गई थी।

5.3 प्रशासनिक ढाँचा

इस काल के दौरान कई नए प्रशासनिक कदम उठाए गए। अफगान राजत्व ने तुर्की अवधारणा को पीछे छोड़ दिया और नयी अवधारणाएँ सामने आयीं। इस बदलाव का प्रतिफलन लगभग सभी प्रशासनिक नीतियों के निर्माण में देखा जा सकता है।

5.3.1 राजत्व की प्रकृति

तुर्की सुल्तानों का राजत्व विशिष्ट रूप से केंद्रीकृत था। सुल्तान के पास निरंकुश शक्तियाँ थीं। लेकिन अफगान शक्ति के उदय के साथ राजतंत्र की प्रकृति में भी स्पष्ट बदलाव नजर आता है। अफगान राजतंत्र मूलतः अपनी प्रकृति में 'कबीलाई' था। उनके लिए राजा अन्य के साथ बराबरी का स्थान रखता था, पर वह 'उन सब में प्रथम स्थान का अधिकारी' ('first among equals') था।

वस्तुतः राजनीतिक कुशलता की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। एक अफगान होने के नाते बहलोल तुर्कों से सहयोग की उम्मीद नहीं रख सकता था। उसे वस्तुतः अपने साथी अफगानों की शर्तों को मानना पड़ता था। अफगान अमीर निश्चित रूप से पूर्ण स्थानीय स्वायत्तता का उपभोग करते थे। उनके और सुल्तान के बीच एक ही समझौता था कि जब कभी सुल्तान को सैन्य सहायता की आवश्यकता होगी, वे अपने सुल्तान की मदद करेंगे। बहलोल की स्थिति यह थी कि वह अपने साथी अफगानों के समक्ष कभी भी सिंहासन पर नहीं बैठा था और न ही उसने खुला दरबार आयोजित करने की चेष्टा की। वह अपने अफगान अमीरों को *मसनद-ए आली* कहकर सम्मान से संबोधित किया करता था।

लेकिन सुल्तान सिकंदर लोदी के समय में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। सिकंदर लोदी अनियंत्रित अमीरों के खतरे से पूरी तरह वाकिफ था। उसे इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उसने कुछ महत्वपूर्ण बदलाव लाकर अपने साम्राज्य में केंद्रीकृत सत्ता की स्थापना की।

अपने पिता सुल्तान बहलोल लोदी के विपरीत सुल्तान सिकंदर लोदी ने अपने अमीरों से आज्ञा पालन की अपेक्षा की। उसके सैनिक अभियानों और विजयों के कारण अमीर उसके प्रति पूरी तरह वफादार और आज्ञाकारी बने रहे। इससे सुल्तान के साथ उनकी समानता की भावना को भी धक्का पहुँचा। वह खुले दरबार आयोजित करता था, सिंहासन पर बैठता था और उसके अमीर सेवकों की तरह सुल्तान को सम्मान देने की मुद्रा में दरबार में खड़े रहते थे। यहाँ तक कि उसकी अनुपस्थिति में भी उच्च अमीर बड़े सम्मान से *फरमान* ग्रहण किया करते थे। जिस अमीर को *फरमान* भेजा जाता था उसे छह मील आगे बढ़कर *फरमान* ग्रहण करना पड़ता था। एक मंच बनाया जाता था। संदेशवाहक उस मंच पर खड़ा होकर *फरमान* नीचे खड़े अमीर के सिर पर रखता था। इसके बाद सभी संबद्ध लोग इसे खड़े होकर सुनते थे। जो अमीर सुल्तान का विश्वास नहीं प्राप्त कर पाते थे, उन्हें सुल्तान का कोप-भाजक बनना पड़ता था। एक समकालीन लेखक के अनुसार, 'अगर कोई आज्ञा के रास्ते से भटकता था, तो वह (सुल्तान) या तो उसे मृत्युदंड देता था या उसे साम्राज्य से बाहर निकाल दिया करता था'।

हालांकि आमतौर पर सुल्तान स्थानीय स्तर पर उनकी स्वायत्तता में दखल नहीं देता था, पर कई बार अमीरों का स्थानांतरण हुआ करता था और कभी-कभी उन्हें पदच्युत भी कर दिया जाता था। सुल्तान ने अहमद खाँ जिलवानी के पुत्र सुल्तान अशरफ को पदच्युत कर दिया था क्योंकि उसने सुल्तान बहलोल लोदी की मृत्यु के बाद बयाना में अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। 1500 में उसने अपने खिलाफ षड्यंत्र में शामिल बाइस बड़े अफगान और गैर-अफगान अमीरों को देश निकाला भी दे दिया था। 1506 में जलाल खाँ लोदी, जिसे उसके पिता के स्थान पर कालपी का गवर्नर बनाया गया था, उसे केवल इसलिए कालकोठरी में डाल दिया गया, क्योंकि उसने 1508 में नरवर के किले का घेरा डालने में ढील दिखायी थी।

अमीरों की *इक्ताओं* में भी उन पर कड़ी नजर रखी जाती थी। परन्तु इन परिवर्तनों के बावजूद अफगान राजत्व मूल रूप से अपरिवर्तनशील रहा। कुछ पद वंशानुगत बने रहे। अफगानों को *खान-ए जहान, ख़ान-ए ख़ानान, आज़म हुमायूँ, खान-ए आज़म,* आदि जैसी बड़ी पदवियाँ दी जाती रहीं। खेल के मैदान, अभियानों, शिकार, आदि जगहों पर सुल्तान के साथ उन्हें अनौपचारिक संबंध बनाए रखने की छूट दी जाती रही। अतः सिकंदर लोदी के अधीन राजतंत्र तुर्की और कबीलाई संगठनों के मिले-जुले रूप में विकसित हुआ।

इब्राहिम के नेतृत्व में केंद्रीकरण की प्रवृत्ति को और भी बल मिला। उसका मानना था कि 'राजत्व में भाई-बंधुत्व का कोई स्थान नहीं था' ('kingship knows no kinship')। उसके शासनकाल में सुल्तान की प्रतिष्ठा इस कदर ऊँचाई पर पहुँच गई थी कि शाही डेरे को भी सम्मान की निगाह से देखा जाने लगा था। हालांकि, इब्राहिम की नीति के बुरे परिणाम सामने आये और यह अफगान साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। अफगान अमीर सुल्तान के साथ मालिक-सेवक के संबंध को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इससे अमीरों में असंतोष फैला और उनमें से कईयों ने बगावत कर दी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी कि सुल्तान को अपदस्थ करने के लिए उन्होंने बाबर तक का साथ दे दिया। जब भारत में दूसरी बार अफगान साम्राज्य (सूर साम्राज्य) की स्थापना हुई तो उन्होंने पहले के अनुभवों से सीख ली और कभी भी कबीलाई राजतंत्र स्थापित करने की कोशिश नहीं की। इसके स्थान पर शेरशाह सूर ने अति केंद्रीकृत निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की और उसे इसमें

सफलता भी मिली। मुगलों के आगमन के बाद एक नया अध्याय शुरू होता है। मुगल, तुर्क और मंगोल दोनों परंपराओं से प्रभावित थे।

5.3.2 प्रशासन व्यवस्था

एक सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की स्थापना का श्रेय सुल्तान सिकंदर लोदी को जाता है। ***मुक्तियों*** और *वलियों* (गवर्नरों) के हिसाब-किताब को जाँचने के लिए उसने लेखा-परीक्षण की प्रथा आरंभ की। सबसे पहले 1506 में जौनपुर के गवर्नर मुबारक खाँ लोदी (तूजी ख़ैल) के हिसाब-किताब की जाँच हुई थी। उसके हिसाब-किताब में गड़बड़ी पायी गयी और उसे बर्खास्त कर दिया गया। इसी प्रकार भ्रष्टाचार के आरोप में दिल्ली प्रशासन के प्रभारी गैर-अफगान पदाधिकारी ख्वाजा असग़र को कैदखाने में डाल दिया गया। साम्राज्य की स्थिति से अपने को पूर्ण अवगत रखने के लिए सुल्तान ने गुप्तचर व्यवस्था को पुनःसंगठित किया। परिणामस्वरूप सुल्तान की अप्रसन्नता के डर से अमीर आपस में राजनैतिक मामलों की चर्चा करने से डरते थे।

सुल्तान ने आम जनता की भलाई के लिए राजधानी और प्रांतों में कल्याणकारी केंद्र खोले, जहाँ अनाथ और विकलांग लोगों की सहायता की जाती थी। ये कल्याणकारी केंद्र जरूरतमंदों को वित्तीय सहायता दिया करते थे। पूरे साम्राज्य में विद्वानों और कवियों को संरक्षण दिया जाता था और शिक्षण संस्थानों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी। उसने सरकारी कार्यालयों में फारसी के अलावा किसी अन्य भाषा के उपयोग पर पाबंदी लगा रखी थी। इससे अनेक हिंदू फारसी सीखने लगे और जल्द ही वे फारसी में निपुण हो गए। परिणामस्वरूप वे राजस्व व्यवस्था में हाथ बंटाने तथा प्रबंधन करने लगे। भारत आने पर बाबर यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि राजस्व विभाग में पूर्णतः हिंदू ही काम करते थे।

इसी प्रकार सिकंदर लोदी निष्पक्ष न्याय का हिमायती था। इस कारण उसके साम्राज्य में शांति और समृद्धि का वर्चस्व रहा।

बोध प्रश्न-1

1) सिकंदर लोदी के साम्राज्य के विस्तार का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित का मिलान कीजिए:

1) आज़म हुमायूँ	क) बिहार का गवर्नर
2) दरिया खाँ नूहानी	ख) पंजाब का गवर्नर
3) जलाल खाँ लोदी	ग) कड़ा का गवर्नर
4) दौलत खाँ लोदी	घ) कालपी का गवर्नर

3) तुर्की और अफगान राजनीतिक व्यवस्था में क्या अंतर था?

.....

.....

.....

.....

4) अमीरों की शक्ति को दबाने के लिए लोदी शासकों ने कौन-कौन से कदम उठाए?

.....

.....

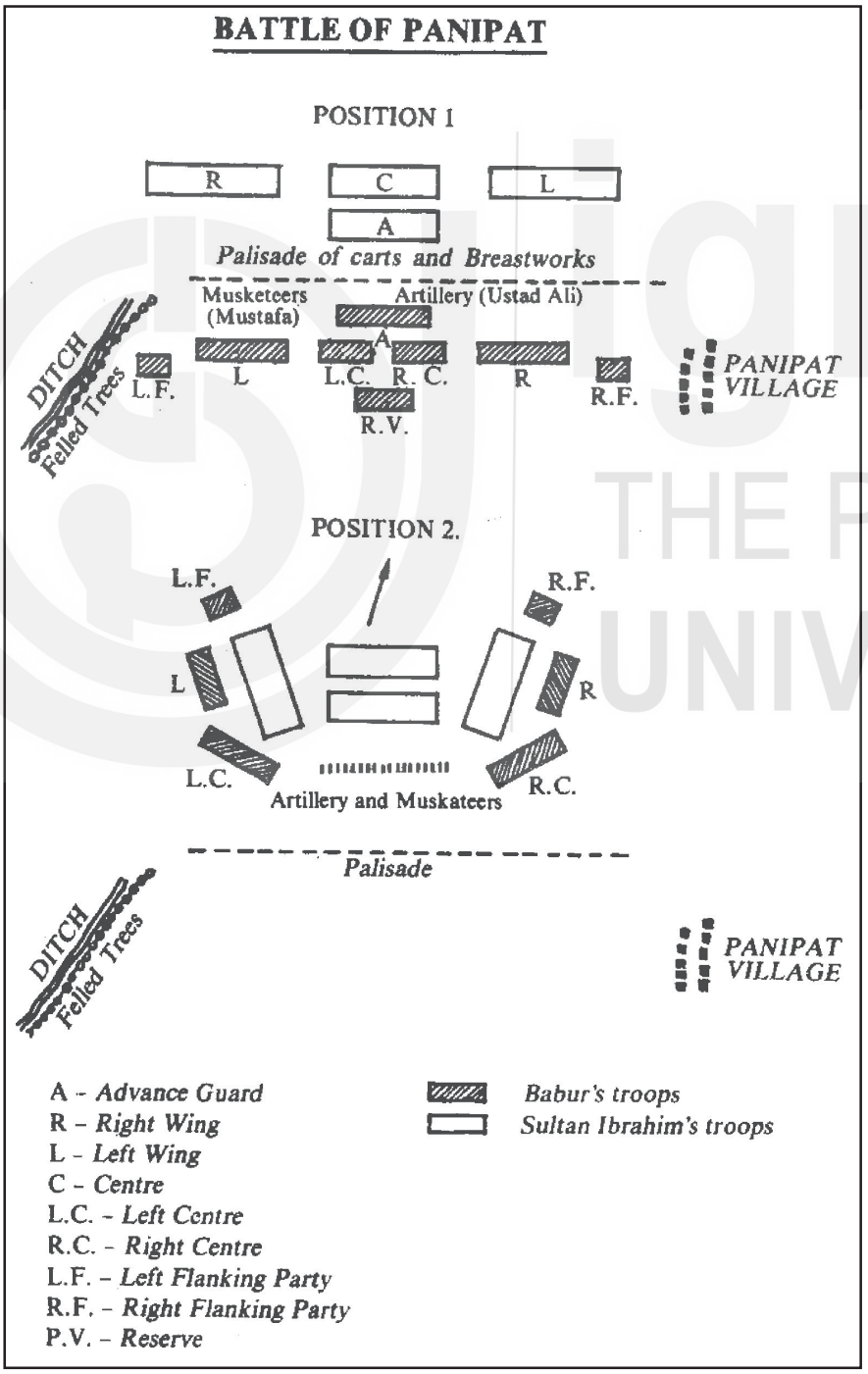
.....

.....

5.4 भारत में मुगल शासन की स्थापना

पानीपत के युद्ध (1526) से पूर्व बाबर ने भारत पर चार बार आक्रमण किए। ये भिड़न्तें मुगल एवं लोदी सेनाओं के बीच शक्ति परीक्षण मात्र था।

बाबर ने प्रथम विजय हिंदुस्तान के प्रवेशद्वार भीरा (1519-1520) पर प्राप्त की। फिर सियालकोट (1520) तथा इसके बाद लाहौर (1524) पर अधिकार प्राप्त किया। निर्णायक मुकाबला इब्राहिम लोदी एवं बाबर की सेनाओं के मध्य ऐतिहासिक पानीपत के मैदान पर हुआ। कुछ घंटों में ही बाबर ने इस युद्ध में विजय प्राप्त कर ली। यह लड़ाई युद्धकला में बाबर की निपुणता को प्रदर्शित करती है। संख्या में कम होने के बावजूद उसका संगठन उच्च कोटि का था। इब्राहिम लोदी की सेना संख्या में बहुत अधिक होने के बावजूद (लगभग 1,00,000 सैनिक तथा 500-1000 हाथी, जबकि इसकी तुलना में बाबर के पास मात्र 12,000 घुड़सवार थे) युद्ध के मैदान में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाई। बाबर ने सफलतापूर्वक रूमी (ऑटोमन) युद्ध पद्धति का इस्तेमाल किया (**चित्र 5.1** देखें)।



चित्र 5.2: बाबर द्वारा पानीपत के युद्ध में इस्तेमाल की गई रूमी युद्ध पद्धति

स्रोत: ई.एच.आई.-04: *भारत: 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक*, खंड 2, इकाई 5, पृ. 8

जैसे ही अफगान सेनाओं ने दाहिने भाग पर आक्रमण किया, बाबर ने तुरंत अब्दुल अज़ीज के नेतृत्व में अपनी आरक्षित सेनाओं को आगे बढ़ने का आदेश दिया। अफगान सेनाएँ संख्या में अधिक होने के बावजूद न आगे बढ़ सकीं और न पीछे। उन पर दोनों ओर से आक्रमण किया गया। इससे अफगान सेना में पूर्णतः खलबली पैदा हो गई। बाबर ने इस स्थिति का भरपूर लाभ उठाया तथा उसके दाएँ एवं बाएँ दोनों भागों ने अफगान सेना पर शीघ्रता से पीछे से हमला किया। इसी के साथ तोप से आग के गोले बरसाये जाने प्रारंभ कर दिये गए। इससे संपूर्ण अफगान सेना तुरंत निष्क्रिय हो गई। बाबर के अनुसार सुल्तान इब्राहिम लोदी सहित अफगान सेना के लगभग 20,000 सैनिक मारे गए। युद्ध में बाबर के तोपखाने ने नहीं अपितु उसकी 'सर्वोच्च युद्ध नीति' तथा 'घोड़ों पर सवार धनुर्धारियों' ने निर्णायक भूमिका अदा की। इस तथ्य की पुष्टि स्वयं बाबर ने की है।

यद्यपि पानीपत के युद्ध से औपचारिक तौर पर भारत में मुगल शासन की स्थापना हो गई किंतु यह आगामी वर्षों में होने वाली लड़ाई में प्रथम मात्र थी। उदाहरण के रूप में, इस विजय को सुनिश्चित करने के लिए मेवाड़ के राणा सांगा पर तथा दिल्ली एवं आगरा तथा उसके आसपास के अमीरों पर विजय प्राप्त करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण था। दूसरे महत्वपूर्ण प्रतिद्वंद्वी पूर्वी भारत के अफगान राज्य थे। इसके अतिरिक्त बाबर के स्वयं के अमीरों की समस्याएँ भी बढ़ रही थीं।

5.4.1 बाबर तथा राजपूत राज्य

जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि मेवाड़ का राणा सांगा एक महत्वपूर्ण शक्ति था। बाबर ने अपने संस्मरणों में राणा सांगा पर आरोप लगाया है कि इब्राहिम लोदी के विरुद्ध पानीपत के युद्ध में उसने उनका साथ न देकर अपना वायदा तोड़ा था। यहाँ इस विवाद में न जाते हुए कि सहायता का प्रस्ताव राणा की तरफ से अथवा बाबर की तरफ से आया था यह वास्तविकता है कि दोनों के मध्य इब्राहिम लोदी के विरुद्ध समझौता करने के लिए अवश्य कुछ सहमति थी जिससे राणा सांगा पीछे हट गया था। राणा को आशा थी कि बाबर काबुल वापस लौट जाएगा और ऐसी स्थिति में राणा सांगा को अगर संपूर्ण हिन्दुस्तान पर नहीं तो कम से कम राजपूताना पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो जाएगी। बाबर के ठहर जाने के निर्णय से राणा सांगा की अभिलाषाओं पर गहरा आघात लगा। बाबर भी इस तथ्य से भली-भांति परिचित था कि उसके लिए अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना तब तक असंभव होगा जब तक कि वह राणा की शक्ति को नष्ट नहीं कर देता। राणा ने इस बार अफगान अमीरों की मदद से बाबर के विरुद्ध 'महासंघ' की स्थापना करने में सफलता प्राप्त कर ली। हसन खाँ मेवाती न केवल राणा के साथ मिल गया अपितु उसने 'महासंघ' के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा की। इस समय (1527) बारी के हसन खाँ और हुसैन खाँ गुर्ग-अंदाज़ भी राणा से जा मिले। हुसैन खाँ नोहानी ने रापरी पर अधिकार कर लिया; रुस्तम खाँ ने कोल पर, जबकि कुतब खाँ ने चंदावर पर अधिकार कर लिया। पूर्वी अफगानों का इतना अधिक दबाव था कि सुल्तान मुहम्मद दुलदई को कन्नौज छोड़ना पड़ा और वह बाबर के साथ शामिल हो गया। साथ ही, बाबर के सेनापति अब्दुल अज़ीज़ तथा मुहिब अली की बयाना में पराजय और उनके द्वारा राजपूत सेना के शौर्य की प्रशंसा ने बाबर की सेना को निरुत्साहित किया। फरिश्ता तथा बदायुँनी (अकबर के समकालीन) के अनुसार पराजय की भावना इतनी अधिक प्रबल थी कि युद्ध परिषद् की बैठक में बहुमत से यह प्रस्ताव पारित किया गया कि बादशाह को पंजाब वापस जाना चाहिए तथा अप्रत्याशित घटनाक्रम की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यद्यपि ***बाबरनामा*** में इस प्रकार के प्रस्ताव के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है, किंतु इस वक्तव्य से 'निराशा एवं भटकाव' का स्पष्ट आभास मिलता है। लेकिन बाबर ने इस स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए अपने साथियों की धार्मिक भावनाओं को छूने वाला एक ओजस्वी भाषण दिया।

बाबर ने सीकरी के पास खानवा गाँव में अपनी स्थिति को घेरेबंदी द्वारा मजबूत किया। यहाँ पर भी उसने अपनी सेना को 'ऑटोमन' पद्धति के आधार पर योजनाबद्ध एवं संगठित किया। इस बार उसने अपनी बायीं ओर एक तालाब की सहायता ली। अग्रिम भाग को सुरक्षित बनाने के लिए इस बार भी लकड़ी की गाड़ियों का प्रयोग किया गया किंतु इस बार इनको रस्सी के स्थान पर लोहे की जंजीरों से कसकर बांधा गया। इस बार लकड़ी की मजबूत तिपाइयों (tripods) का प्रयोग उनको एक-दूसरे से रस्सी से बांधकर किया गया। इससे न केवल सुरक्षा एवं तोपों को आराम से रखना संभव हुआ अपितु उनको पहियों की मदद से सरलता से आगे-पीछे भी घुमाया जा सकता था। इस युद्धकला को उस्ताद

मुस्तफा तथा उस्ताद अली के नेतृत्व में पूरा करने में लगभग 20-25 दिन लगे। इस लड़ाई (17 मार्च 1527) में बाबर ने अपने तोपखाने का सफल प्रयोग किया। राणा सांगा गंभीर रूप से घायल हो गया और उसको आमेर के पास बसवा ले जाया गया। उसके अन्य सहायकों में महबूब खाँ लोदी भाग निकला किंतु हसन खाँ मेवाती मारा गया। राजपूतों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। वास्तव में सेना की ऐसी कोई टुकड़ी न थी जिसका सेनापति न मारा गया हो। श्यामल दास (*वीर विनोद*) ने रायसेन के शासक सिलहदी पर विश्वासघात का आरोप लगाया है और इसे राणा की पराजय का मुख्य कारण माना है। किंतु वास्तव में राणा द्वारा तीन सप्ताह तक निष्क्रिय बने रहना अतार्किक था। इससे बाबर को स्वयं को शक्तिशाली बनाने और लड़ाई की पूर्ण तैयारी करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। बाबर की अनुशासनबद्ध सेना, गतिशील घुड़सवार एवं उसके तोपखाने ने युद्ध में निर्णायक भूमिका अदा की।

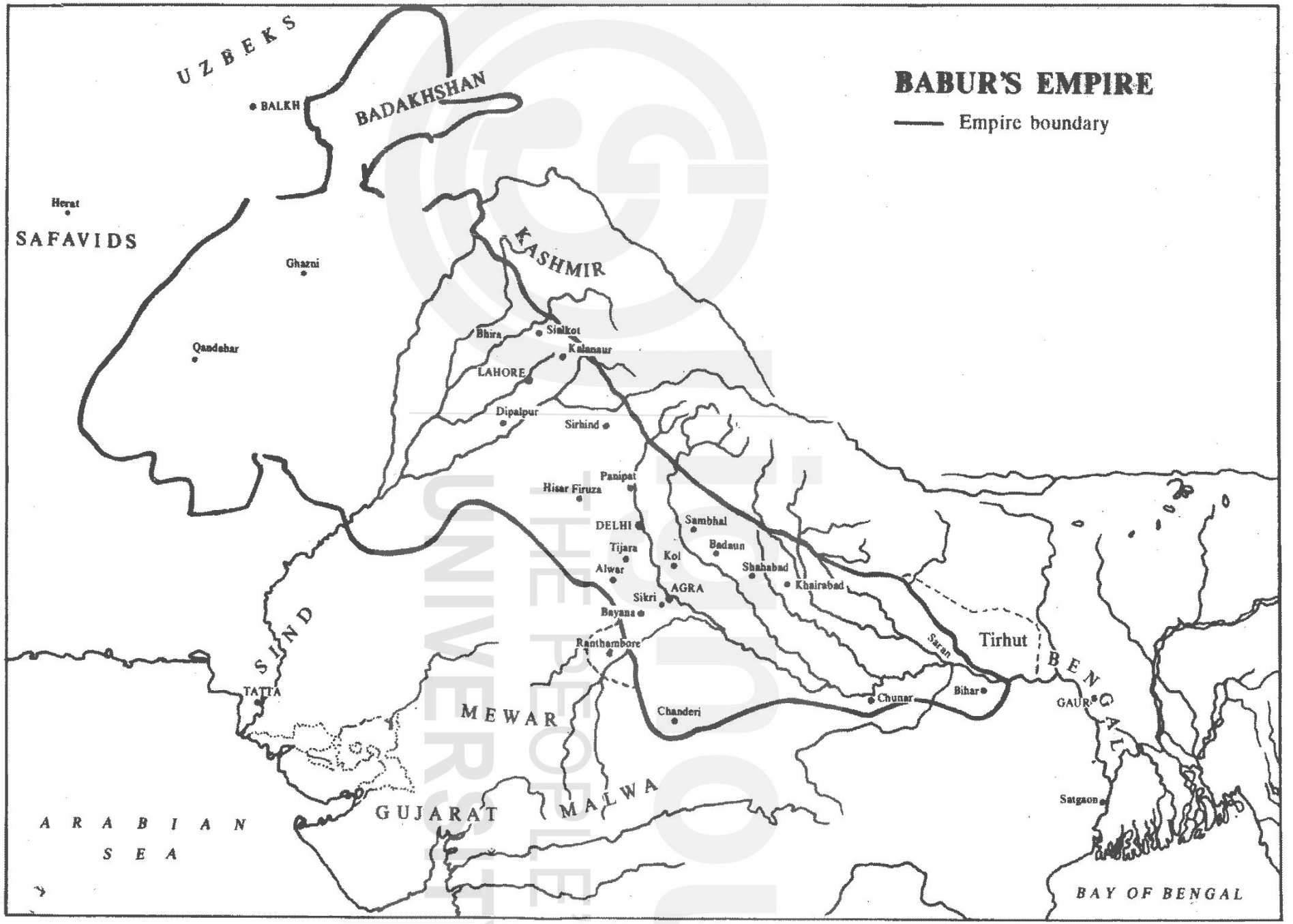
यद्यपि मेवाड़ के राजपूतों को खानवा के युद्ध में भारी आघात पहुंचा था; किंतु मालवा में मेदिनी राय अभी भी निश्चित रूप से शक्तिशाली था। 1520 में राणा सांगा ने मालवा के महमूद द्वितीय के प्रमुख अमीर मेदिनी राय को मालवा सौंप दिया था। 1528 में चंदेरी के युद्ध में यद्यपि राजपूतों ने अपने पूरे पराक्रम के साथ युद्ध किया किंतु बाबर ने मेदिनी राय पर सरलता से विजय प्राप्त कर ली। मेदिनी राय की पराजय के साथ ही राजपूताना में विद्रोही ताकतें पूर्णतः विखण्डित हो गयीं। लेकिन अभी भी बाबर को अफगान समस्या का सामना करना शेष था क्योंकि महमूद खाँ लोदी पहले ही पूर्व की ओर भाग गया था और यदि उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाता तो वह बाबर के लिए समस्या पैदा कर सकता था।

5.4.2 बाबर तथा अफगान स्वायत्त सरदार

यद्यपि अफगानों को दिल्ली समर्पण करना पड़ा, किन्तु फिर भी वे पूर्व में बिहार एवं जौनपुर के क्षेत्रों में काफी शक्तिशाली थे जहाँ पर सुल्तान मुहम्मद नोहानी के नेतृत्व में नोहानी अफगानों का प्रभुत्व था। किंतु चुनार, जौनपुर तथा अवध के अफगान, नोहानी अफगानों के साथ मिलकर मुगल शक्ति का संयुक्त विरोध करने के लिए तैयार नहीं थे। बल्कि उन्होंने कायरतापूर्वक हुमायूँ के सम्मुख समर्पण (1527) कर दिया। इसी बीच सुल्तान मुहम्मद नोहानी की मृत्यु (1528) हो गई जिसने नोहानियों को असंगठित कर दिया क्योंकि उसका पुत्र जलाल खाँ अभी नाबालिग था। परंतु इस खाली स्थान को शीघ्र ही सिकंदर लोदी के पुत्र तथा इब्राहिम के भाई राजकुमार महमूद लोदी के पूर्व में आगमन ने भर दिया। इससे गैर-नोहानी अफगान जो पहले नोहानियों के साथ सहयोग करने में थोड़ा हिचकिचा रहे थे, महमूद लोदी के नेतृत्व को स्वीकार करने को तैयार हो गए। इसके अतिरिक्त बब्बन, बायज़िद तथा फतह खाँ सरवानी जैसे नोहानी अफगान, जो जलाल के बंगाल चले जाने पर नेतृत्वविहीन हो गए थे, ने भी महमूद का स्वागत किया। यद्यपि बंगाल का शासक नुसरत शाह बाह्य तौर पर बाबर के साथ मित्रता का दावा कर रहा था किंतु गुप्त रूप में उसने बाबर के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण उपायों को अपनाया। उसके लिए बिहार के नोहानी राज्य का अस्तित्व अपने अधीनस्थ बिहार अधिकृत क्षेत्र की सुरक्षा के लिए मुगलों के विरुद्ध मध्यवर्ती राज्य के समान था।

बाबर इन घटनाक्रमों की अनदेखी नहीं कर सकता था। उसने अपनी सेनाओं को घाघरा नदी के समीप एकत्रित किया और नुसरत शाह की सेना पर विजय (1529) प्राप्त की। इस प्रकार अफगान-नुसरत गठबंधन टूट गया और नुसरत खाँ को भारी मात्रा में अफगान विद्रोहियों का समर्पण करना पड़ा जिन्होंने उसके राज्य में शरण ले रखी थी। इस घटनाक्रम से अफगानों का मनोबल पूर्णतः टूट गया। यद्यपि बब्बन एवं बायज़िद ने अवध में मुगल शक्ति का प्रतिरोध करने का प्रयास किया लेकिन जब उन पर मुगल दबाव पड़ा (1529) तो वे भी महमूद के पास भाग गए। इस प्रकार बाबर ने चार वर्षों के अंदर समस्त विरोधी शक्तियों को कुचलने में सफलता प्राप्त की और वह अब स्वयं की स्थिति को दिल्ली में सुदृढ़ करने की योजना बना सकता था। परंतु उसको शासन करने का उचित अवसर प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि शीघ्र ही उसकी मृत्यु 29 दिसंबर, 1530 में हो गई।

बाबर के संरक्षणत्व में मुगल साम्राज्य की स्थापना एक महत्वपूर्ण घटना थी। यद्यपि उसके द्वारा राजपूत एवं अफगान शक्ति का पूर्ण दमन नहीं किया जा सका था, यह कार्य उसके उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ दिया गया, लेकिन पानीपत तथा खानवा की सफलताएँ निर्णायक थीं जिन्होंने इस क्षेत्र में तत्कालीन शक्ति संतुलन को नष्ट किया और संभवतः वह अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना की दिशा में एक कदम था।



मानचित्र 5.2: बाबर का साम्राज्य

स्रोत: ई.एच.आई.-04: *भारत: 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक*, खंड 2, इकाई 5, पृ. 10

1) पानीपत के युद्ध में इब्राहिम लोदी के विरुद्ध बाबर की सफलता की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) खानवा के युद्ध के महत्व की विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

3) बाबर के विरुद्ध नुसरत-अफगान गठबंधन पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

5.5 हुमायूँ: 1530-1540

हुमायूँ के अधीन स्थिति काफी भिन्न थी। बाबर के विपरीत उसे कुलीनों का सम्मान एवं आदर प्राप्त न था। इससे भी खतरनाक स्थिति यह थी कि चग़ताई कुलीन वर्ग हुमायूँ के विशेष पक्ष में नहीं था। साथ ही भारतीय कुलीन भी, जिन्होंने बाबर की स्वायत्तता स्वीकार कर ली थी, हुमायूँ के सत्तारूढ़ होने पर उसका साथ छोड़ गए। तैमूर के वंशज मुहम्मद सुल्तान मिर्ज़ा, मुहम्मद ज़मां तथा बाबर के बहनोई मुहम्मद महदी ख्वाजा सिंहासन पर अपना अधिकार करना चाहते थे और विशेषकर बाबर के एक कुलीन अमीर निज़ामुद्दीन अली खलीफा ने एक षड्यंत्र रचा किंतु वह असफल रहा। हुमायूँ को शाही सत्ता तथा आधिपत्य बनाए रखने के लिए पूर्व एवं पश्चिम में उन अफगानों के विरुद्ध संघर्ष करना था जिनके पास व्यापक सामाजिक आधार था। लेकिन हुमायूँ के लिए सबसे बड़ा खतरा उसके स्वयं के भाई कामरान मिर्ज़ा से था। साम्राज्य में सत्ता के दो केंद्रों – केंद्र में हुमायूँ और अफगानिस्तान तथा पंजाब में मिर्ज़ा कामरान – की स्वायत्तता स्थापित हो जाने से स्थिति और भी बिगड़ गई। हुमायूँ ने पहले पश्चिम के अफ़गानों से निपटने का निर्णय किया।

5.5.1 बहादुर शाह तथा हुमायूँ

परिस्थितियों के कारणवश बहादुर शाह तथा हुमायूँ के संबंधों के बीच एक विचित्र विरोधाभास था। बहादुर शाह ने प्रारंभ में (1531 के प्रारम्भ से 1533 के मध्य तक) हुमायूँ को मित्रता एवं वफादारी का आश्वासन दिया। लेकिन ठीक उसी समय उसने मुगल सीमाओं से लगे क्षेत्रों में अपने प्रभाव का भी प्रसार करने का प्रयत्न किया। बहादुर शाह का प्रथम शिकार मालवा था। बहादुर शाह को पहले से ही मालवा पर मुगलों की नीयत का आभास हो गया था। उसको डर था कि यदि मध्यवर्ती राज्य पर अधिकार किए बगैर छोड़ दिया गया तो मुग़ल शासक इसको विजित करने का प्रयास कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुजरात बन्दरगाह की ओर जाने वाले सभी व्यापारिक मार्ग मालवा से होकर गुजरते थे। यह अनाज उत्पादन की दृष्टि से भी एक उपजाऊ एवं सम्पन्न क्षेत्र था और गुजरात अनाज की आपूर्ति के लिए मालवा पर निर्भर था। 1530 के बाद बहादुर शाह ने मालवा पर सैनिक दबाव डालना प्रारंभ कर दिया। अंततः जनवरी 1531 में बहादुर शाह ने इस पर अधिकार कर लिया। इस घटना के तुरंत बाद बहादुर शाह ने हुमायूँ के विरोधियों – बिहार में शेरशाह (1531-1532) तथा बंगाल में नुसरत शाह (अगस्त-सितंबर 1532) – के साथ गठबंधन की प्रक्रिया शुरू कर दी। नुसरत शाह ने भी ख्वाजासरा मलिक के अधीन (अगस्त-सितंबर 1532) एक प्रतिनिधि मंडल गुजरात भेजा जिसका बहादुर शाह ने पूर्ण स्वागत किया। इसके अतिरिक्त उत्तर तथा पूर्व के अनेक हताश अफगान भी अपने खोये सम्मान को 'पुनः स्थापित' करने के लिए मुगलों को बाहर निकालने के प्रयास में बहादुर शाह

के साथ शामिल हो गए। बहलोल लोदी का पुत्र सुल्तान अलाउद्दीन लोदी तथा उसके पुत्र फतेह खाँ एवं तातर खाँ, ग्वालियर के राजा बिक्रमाजीत का भतीजा राय नर सिंह (1528) तथा कालपी का आलम खाँ लोदी (1531) ये सभी नेतृत्व के लिए बहादुर शाह की ओर देखने लगे और उन्होंने उसे मुगलों के विरुद्ध मदद देने की पेशकश की। पूर्व के अफगान बब्बन खाँ लोदी (शाहू खैल), मलिक रूपचंद, दत्तू सरवानी तथा मारूफ फरमूली बहादुर शाह के साथ मिल गए।

इन घटनाक्रमों की हुमायूँ द्वारा अवहेलना करने पर उसे भयंकर परिणामों का सामना करना पड़ सकता था। हुमायूँ पर पश्चिम एवं पूर्व की ओर से संयुक्त आक्रमण की स्थिति में स्थिति और भी भयंकर सिद्ध होती। इस दौरान बहादुर शाह का विजय अभियान बगैर किसी रुकावट के जारी था। उसने भीलसा, रायसेन, उज्जैन तथा गगरौन पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वह मुगलों को ग्वालियर, कालिंजर, बयाना एवं आगरा से दूर रख सका। जिस समय बहादुर शाह मालवा तथा राजपूताना की ओर क्षेत्रीय प्रसार में व्यस्त था उस समय हुमायूँ चुनार पर अधिकार करने में उलझा हुआ था। इस घटनाक्रम ने हुमायूँ को आगरा वापस लौटने के लिए बाध्य किया (1532-1533)। लेकिन बहादुर शाह प्रकट तौर पर मुगलों के साथ किसी भी प्रकार के संघर्ष को टालना चाहता था। उसने तत्काल खुरासान खाँ (1533-1534) के अधीन एक प्रतिनिधिमंडल हुमायूँ के पास भेजा। हुमायूँ ने माँग की कि बहादुर शाह किसी भी मुगल विद्रोही, विशेषकर मुहम्मद ज़मां मिर्ज़ा, को शरण नहीं देगा। इसी के साथ हुमायूँ बहादुर शाह के गुजरात अधीनस्थ क्षेत्रों को चुनौती न देने के लिए सहमत हो गया और बहादुर शाह ने भी मांडू छोड़ने का वायदा किया। तत्पश्चात् बहादुर शाह पुर्तगालियों द्वारा उत्पन्न खतरे का दमन करने में (सितंबर-दिसंबर 1533) तथा हुमायूँ पूर्व में अफगान समस्या का समाधान करने में व्यस्त रहा।

नए घटनाक्रम का परिणाम गुजरात पर 1535 में हुमायूँ के आक्रमण के रूप में निकला। जनवरी 1534 में बहादुर शाह ने मुहम्मद ज़मां मिर्ज़ा को शरण दी और चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। चित्तौड़ बहादुर शाह के लिए इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे उसे राजपूताना में एक मजबूत आधार प्राप्त हो जाता जिससे वह सफलतापूर्वक अजमेर, नागौर तथा रणथम्भौर की ओर प्रसार कर सकता था। लेकिन हुमायूँ ने इस बिंदु पर बहादुर शाह को चित्तौड़ विजय करने से रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया। आगरा से कालपी की ओर हुमायूँ का संक्रमण भी काफी धीमा था। ठीक इसी प्रकार उसने चित्तौड़ पहुंचने के लिए भी लंबे मार्ग को चुना। ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूँ को बहादुर शाह को चित्तौड़ पर अधिकार करने से रोकने में कोई विशेष दिलचस्पी न थी। बहादुर शाह हुमायूँ के अवरोध खड़ा करने से पूर्व ही मांडू पहुंचने के लिए चिंतित था। लेकिन हुमायूँ काफी पहले मांडू पहुंचने में सफल रहा। चित्तौड़ से गुजरात वापस लौटने का एकमात्र मार्ग मांडू से था और इस पर पहले ही हुमायूँ द्वारा अधिकार कर लिया गया था। हुमायूँ ने बहादुरशाह की सेना की सभी ओर से घेराबंदी कर उसकी आपूर्ति रोक दी। एक माह के अंदर ही, जब कोई आशा शेष न रही, गुजरात की सेना को अपने सर्वश्रेष्ठ तोपखानों को मुगलों को उनके ही विरुद्ध उनके प्रयोग को रोकने के लिए स्वयं ही नष्ट करना पड़ा। बहादुर शाह मांडू से चम्पानेर, अहमदाबाद होता हुआ कैम्बे (खंभात) की ओर भाग गया और काठियावाड़ को पार कर द्यु पहुंचा। मुगलों ने उसका पीछा किया। लेकिन एक बार फिर उन्होंने बहादुर शाह को गिरफ्तार करने या उसकी हत्या करने के लिए कोई उत्सुकता नहीं दिखाई।

ऐसा प्रतीत होता है कि हुमायूँ का मुख्य उद्देश्य मात्र गुजरात की शक्ति को नष्ट करना था। जिस समय चम्पानेर में मुगल सेनाओं ने बहादुरशाह को पहचान लिया उन्होंने उसको गिरफ्तार नहीं किया। इसी समय आगरा में लंबे समय से हुमायूँ की अनुपस्थिति के कारण दोआब एवं आगरा में विद्रोह भड़क उठे। अतः उसे शीघ्र ही मांडू छोड़ना पड़ा तथा उसने आगरा की ओर तेजी से कूच किया। अतः मांडु को मिर्ज़ा असकरी के आधिपत्य में दे दिया गया। उधर गुजरात तथा मालवा में मुगलों द्वारा स्थानीय जनता के साथ किए गए व्यवहार के कारण स्थानीय विद्रोह प्रारंभ हो गए। मुगल सेनाओं ने लोगों को लूटा एवं उनकी हत्या की। इसके फलस्वरूप जैसे ही हुमायूँ ने मांडू छोड़ा वैसे ही लोगों ने बहादुर शाह का द्यू से वापस लौटने पर स्वागत किया। बहादुर शाह ने अवसर का लाभ उठाते हुए मुगलों को अहमदाबाद में पराजित कर दिया। किंतु इस बीच बहादुर शाह को पुर्तगालियों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए द्यू वापस लौटना पड़ा। लेकिन इस बार पुर्तगाली अपने अभियान में सफल रहे और उन्होंने विश्वासघात से बहादुर शाह की हत्या कर दी (17 फरवरी 1537)। इससे सभी जगहों पर भ्रांति की स्थित उत्पन्न हो गई। अफगानों के सम्मुख कोई विकल्प शेष न रहा और वे नेतृत्व के लिए शेरशाह की ओर देखने लगे।

5.5.2 पूर्वी अफगान तथा हुमायूँ

नवम्बर 1531 में हुमायूँ के हाथों (चुनार के युद्ध में) पराजित हो जाने पर अफगान कुलीन गुजरात की ओर भाग गए थे। इससे पूर्व में राजनैतिक रिक्तता उत्पन्न हो गई थी जिसने शेरशाह को अपनी सत्ता को सुदृढ करने का सुअवसर प्रदान किया।

1530-35 के वर्ष शेरशाह के लिए निर्णायक साबित हुए। पूर्व में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करते समय उसको बंगाल एवं उन अफगान कुलीनों का सामना करना पड़ा जिनको बंगाल के शासक द्वारा आश्रय प्रदान किया गया था। दूसरी ओर वह मुगलों के साथ सीधा संघर्ष करने की स्थिति में भी नहीं था। भाग्यवश परिस्थितियों में शेरशाह के अनुकूल परिवर्तन हुआ। हुमायूँ ने गुजरात के शासक बहादुर शाह को गंभीर खतरा मानकर सर्वप्रथम उससे निपटने का निर्णय किया। इन वर्षों के दौरान शेरशाह को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया।

शेरशाह को बंगाल शासकों के दो हमलों का सामना करना पड़ा। प्रथम आक्रमण मुंगेर के ***मुक्ती*** (गवर्नर) कुतब खाँ के नेतृत्व में 1532-1533 में सुल्तान नुसरत शाह के शासनकाल में हुआ। और दूसरा सुल्तान महमूद शाह के शासनकाल में इब्राहिम खाँ के नेतृत्व में 1534 में किया गया। लेकिन दोनों अवसरों पर बंगाल की सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। इन सफलताओं ने बंगाल सेनाओं की कमजोरियों को पूर्णतः उजागर कर दिया। इससे शेरशाह की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि हुई। पूर्व के वे अफगान जो पहले उसको छोड़कर चले गए थे अब उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए। इसके अतिरिक्त हुमायूँ द्वारा बहादुर शाह की शक्ति नष्ट कर दिए जाने एवं बहादुर शाह की मृत्यु हो जाने के कारण अफगानों के पास मुगलों के विरुद्ध शेरशाह का साथ देने के अलावा और कोई विकल्प शेष न रहा था।

अब शेरशाह स्वयं को अफगानों का सार्वभौमिक लीडर सिद्ध करना चाहता था। इस समय 1535 में उसने स्वयं बंगाल के शासक पर आक्रमण किया तथा सूरजगढ़ के युद्ध में बंगाल की सेना को पराजित कर दिया। युद्ध के बाद एक शांति समझौते के अनुसार शेरशाह को जब कभी भी आवश्यकता होगी बंगाल का सुल्तान महमूद शाह उसको हाथियों की आपूर्ति एवं वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए सहमत हो गया। बंगाल के विरुद्ध इस शानदार सफलता के बाद शेरशाह ने मुगलों के पूर्वी क्षेत्र गोरखपुर एवं बनारस पर आक्रमण किया जो हुमायूँ के लिए चेतावनी थी। हुमायूँ ने पूर्वी क्षेत्र की निगरानी करने के लिए हिंदू बेग को जौनपुर का गवर्नर (*हाकिम*) नियुक्त किया। लेकिन शेरशाह ने एक ओर सावधानीपूर्वक हिंदू बेग को मुगलों के प्रति अपनी निष्ठा का आश्वासन दिया, दूसरी ओर इस समय का सदुपयोग उसने अपनी सेना को मुगलों पर कड़ा प्रहार करने के लिए मजबूत करने में लगाया। जैसे ही शेरशाह की तैयारियाँ पूर्ण हो गईं उसने हिंदू बेग को एक धमकी भरा पत्र लिखा। ठीक उसी समय उसने बंगाल पर दूसरा आक्रमण (1537) किया। हिंदू बेग ने शेरशाह के इस व्यवहार से नाराज हो उसके शत्रुतापूर्ण इरादों की सूचना हुमायूँ को दी। हुमायूँ के अफगान कुलीनों ने उसे सुझाव दिया कि वह शेरशाह को बंगाल पर अधिकार करने से रोके, जबकि उसके मुगल कुलीनों का विचार था कि उसको प्रथम चुनार पर अधिकार करना चाहिए तथा उसे आधार बनाकर पूर्व में अपनी कार्यवाहियों का संचालन करना चाहिए। आगरा के साथ संपर्क बनाए रखने के लिए द्वितीय विकल्प महत्वपूर्ण था। लेकिन रुमी खाँ को चुनार पर अधिकार करने में (छ : माह का) लंबा समय लगा। इतिहासकार इसको एक 'भयंकर भूल' मानते हैं क्योंकि हुमायूँ को इसका मूल्य अपना 'साम्राज्य' खोकर चुकाना पड़ा। यद्यपि चुनार को अफगानों के हाथों में स्वतंत्र छोड़ना जहाँ एक ओर मूर्खतापूर्ण कार्य था वहीं शेरशाह को बंगाल में स्वतंत्र एवं बगैर किसी नियंत्रण के छोड़ना भी 'गलत' था।

शेरशाह ने इस समय का उपयोग बंगाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार (अप्रैल 1538) करने के लिए किया। हुमायूँ ने शेरशाह से बंगाल एवं रोहतासगढ़ की माँग की, किंतु शेरशाह बंगाल देने के लिए तैयार न था। अतः वार्तालाप असफल हो गया। अंततः हुमायूँ ने शेरशाह की शक्ति को समाप्त करने का निर्णय किया, लेकिन वह स्वयं को बंगाल की राजनीति में फंसाना नहीं चाहता था। फिर भी परिस्थितियों ने उसको ऐसा करने के लिए बाध्य किया। शेरशाह ने चतुराई से स्वयं को बंगाल से अलग कर लिया और हुमायूँ को बगैर किसी बाधा के बंगाल तक पहुंचने (सितंबर 1538) दिया।

हुमायूँ को बंगाल में चार माह तक वहाँ पर व्याप्त अराजकता को ठीक करने के लिए ठहरना पड़ा। इसी बीच शेरशाह ने आगरा के मार्गों पर नियंत्रण करने में सफलता प्राप्त की और इस प्रकार हुमायूँ के लिए आगरा के साथ संपर्क मुश्किल कर दिया। हिन्दाल मिर्ज़ा ने हुमायूँ की चिंताओं को उस समय और बढ़ा दिया जब उसे सेना के लिए आपूर्ति की व्यवस्था करने के लिए भेजा गया था, किंतु उसने स्वयं को एक स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। हुमायूँ ने तुरंत चुनार की ओर प्रस्थान किया और वह मार्च 1539 को चौसा पहुंचा। उसने कर्मनासा नदी के पश्चिमी किनारे पर अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया। इस समय भी हुमायूँ का स्थिति पर पूर्ण नियंत्रण था। उसका अग्रिम भाग नदी द्वारा सुरक्षित था पीछे के हिस्से में चुनार स्थित था, जिस पर अभी भी उसकी सेना का नियंत्रण था। शेरशाह ने भी समझौता करने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन इस स्थिति में हुमायूँ ने नदी पार कर स्वयं को अनावश्यक खतरे में डाल दिया। शेरशाह हुमायूँ की सामग्री, हथियारों एवं परिवहन की कमी से भली-भांति परिचित था। अतः उसने स्थिति से लाभ उठाने में कोई समय नष्ट नहीं किया। उसने समझौते की शर्तों को पूरा करने का बहाना करते हुए मुगल सेना पर अचानक आक्रमण कर दिया। मुगल खेमे में भगदड़ व्याप्त हो गई। बड़ी संख्या में मुगल सेना नष्ट हो गई। हुमायूँ एवं असकरी मिर्ज़ा ने भागने में सफलता प्राप्त की। हुमायूँ कड़ा मानिकपुर तथा कालपी के रास्ते आगरा पहुंचा (जुलाई 1539)। गहोरा के राजा वीरभान ने उनके बचाव में काफी मदद की। कामरान मिर्ज़ा ने हुमायूँ का नष्ट हुई सेना के साथ आगरा वापस लौटने पर स्वागत किया। जबकि शेरशाह ने अपनी विजय से पुलकित होकर स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। इन परिस्थितियों में अंतिम संघर्ष अपरिहार्य था। हुमायूँ को गंगा के तट पर 1540 में हुए कन्नौज के युद्ध में बुरी तरह से पराजय का सामना करना पड़ा। इस हार ने भारत में 'द्वितीय अफगान साम्राज्य' की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त्र किया। शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की असफलता के बहुत से कारण थे। कुछ मुख्य इस प्रकार हैः

क) उसे भाइयों के वैमनस्य का सामना करना पड़ा। उसने भाइयों के साथ कई अवसरों पर अत्यधिक दयालुतापूर्वक व्यवहार किया।

ख) कई परिस्थितियों में जबकि उसे तीव्रता के साथ कार्यवाही करनी चाहिए थी, उसने सुस्ती दिखाई। इसे उसके गुजरात एवं बंगाल अभियानों के दौरान देखा जा सकता है।

ग) वह 'निष्ठुर भाग्य' का भी शिकार हुआ। उदाहरण के लिए, बंगाल के महमूद शाह ने उसे अनावश्यक बंगाल की राजनीति में उलझाये रखा जिससे शेरशाह को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर प्राप्त हुआ।

घ) निरंतर युद्धों को जारी रखने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों की भी हुमायूँ के पास कमी थी। उसकी यह कमजोरी उस समय और अधिक उजागर हुई जिस समय वह बंगाल में (1539) निःसहाय था एवं उसके पास धन तथा आपूर्ति दोनों की कमी थी।

ड.) इसके अतिरिक्त शेरशाह के पास साहस, अनुभव तथा संगठनात्मक योग्यता थी। वह राजनैतिक अवसरों का लाभ उठाने में निपुण था। हुमायूँ का इन गुणों में उससे कोई मुकाबला न था।

5.5.3 हुमायूँ एवं उसके भाई

अपने पिता बाबर की मृत्यु के पश्चात् हुमायूँ ने अपने साम्राज्य को चार भागों में विभाजित कर दिया। मेवात हिन्दाल को, सम्भल असकरी को तथा पंजाब, काबुल तथा कंधार कामरान को दिया। साम्राज्य का हुमायूँ द्वारा किया गया विभाजन उसके लिए हानिकारक था क्योंकि इससे उसके पास सीमित संसाधन शेष रहे। उसके उदारतापूर्ण व्यवहार के बावजूद जब कभी भी उसको आवश्यकता हुई उसके भाइयों ने उसकी मदद नहीं की। अहमदाबाद पर बहादुर शाह के आक्रमण के समय उसका भाई असकरी मिर्ज़ा, जिसे हुमायूँ ने गुजरात का गवर्नर नियुक्त किया था, उत्पन्न समस्या का हल न कर सका। फलस्वरूप हुमायूँ को मालवा खोना पड़ा (1537)। कन्नौज के युद्ध में शेरशाह द्वारा पराजित होने के पश्चात् जब हुमायूँ को सहायता की अति आवश्यकता थी, उस समय असकरी मिर्ज़ा ने इस निर्णायक अवसर पर उसका साथ छोड़कर कामरान के साथ कंधार की ओर प्रस्थान किया। परंतु हिन्दाल मिर्ज़ा हुमायूँ के प्रति वफादार बना रहा। अंततः वह उसके लिए युद्ध करता हुआ मारा (1551) गया।

हुमायूँ को सबसे बड़ा खतरा कामरान मिर्ज़ा से था क्योंकि उसने अफगानिस्तान तथा पंजाब में लगभग एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार सत्ता के दो केंद्र बन गए – एक काबुल-लाहौर में और दूसरा आगरा में। इस स्थिति ने एक केंद्रीकृत राज्य के उदय में बाधा उत्पन्न की और यह राजनीतिक अस्थिरता उस प्रथम संकट (1538-1540), जिसका सामना मुगलों को करना पड़ा, के समय विशिष्ट रूप से उजागर हुई। यद्यपि कामरान मिर्ज़ा हुमायूँ के प्रति प्रारंभिक वर्षों में वफादार बना रहा और एक बार हिन्दाल मिर्ज़ा द्वारा उत्पन्न समस्या का समाधान करने के लिए वह दिल्ली के गवर्नर यादगार नासिर मिर्ज़ा के आमंत्रण पर दिल्ली भी आया (जून 1539)। किंतु दोनों भाई हिन्दाल तथा कामरान चौसा के युद्ध में हुमायूँ की सहायता करने के स्थान पर दूर से ही स्थिति का आकलन करते रहे। यदि उन्होंने समय पर हुमायूँ की भरपूर सहायता की होती तो संभवतः हुमायूँ शेरशाह को पराजित कर पाता।

ऐसा प्रतीत होता है कि कामरान अफगानों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाने की अपेक्षा अपने क्षेत्र की सुरक्षा बनाए रखने में अधिक रुचि रखता था। हुमायूँ का शेरशाह के साथ अंतिम युद्ध (1540) से पूर्व ही कामरान मिर्ज़ा ने लाहौर में हुमायूँ की सेवा में संपूर्ण सेना भेजने के स्थान पर मात्र 3000 सिपाहियों को ही भेजा। 1540 में हुमायूँ के शेरशाह के हाथों पराजित हो जाने के बाद कामरान ने काज़ी अब्दुल्लाह के माध्यम से शेरशाह को पंजाब को सीमा के रूप में स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा। शेरशाह ने इससे अनुमान लगाया कि दोनों भाइयों के मध्य एकता का अभाव है। अतः मौके का फायदा उठाकर उसने उसे सिंधु नदी को सीमा मानने पर मजबूर किया। कामरान का विचार था कि उसको अपने भाई हुमायूँ की अक्षमता के कारण शेरशाह को पंजाब देना पड़ा और वह काबुल तथा कंधार को बचाने के लिए अधिक चिंतित हो गया। 1545-1553 के वर्षों में हुमायूँ सतत् कामरान मिर्ज़ा से संघर्षरत रहा। परंतु इन सब के बावजूद हुमायूँ की असफलता का पूरा उत्तरदायित्व उसके भाइयों पर नहीं थोपा जा सकता। लेकिन फिर भी यदि हुमायूँ को अपने भाइयों का भरपूर समर्थन प्राप्त हुआ होता तो हुमायूँ के लिए परिस्थितियाँ थोड़ी बेहतर हो सकती थीं और साम्राज्य को बचाया जा सकता था।

5.6 भारत में द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापनाः 1540-1555

अंततः हुमायूँ को निष्कासित करने के बाद शेरशाह पूर्व में सिंधु से लेकर बंगाल की खाड़ी तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में मालवा तक उत्तर भारत का सम्राट बन गया। मुल्तान और ऊपरी सिंध के बलोच अमीर और पश्चिमी राजपूताना में मालदेव और रायसेन के भैया पूरनमल पराजित हो गए। शेरशाह सूर के अधीन एक बार फिर एक केंद्रीकृत राजनीतिक व्यवस्था की शुरुआत हुई। शेरशाह के आगमन के बाद, उत्तर भारत में एक नए इतिहास का सूत्रपात हुआ। वैचारिक और संस्थागत क्षेत्रों में भी कई महत्वपूर्ण बदलाव आए।

मुगल सम्राट को पराजित करने के पश्चात् शेरशाह ने स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया तथा 'द्वितीय अफगान साम्राज्य' को संगठित करना शुरू किया। अफगान शासन के पंद्रह वर्ष (1540-1555) मुगल साम्राज्य के इतिहास में अंतराल के वर्ष थे। लेकिन इसके बावजूद भी यह समय प्रशासनिक प्रयोगों एवं पुनर्गठन की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। शेरशाह अपने संक्षिप्त शासनकाल (1540-1545) में नए साम्राज्य को एकीकृत बनाए रखने के लिए युद्धरत रहा। यहाँ हम इस काल के दौरान शेरशाह के संघर्षों का संक्षिप्त विवरण करेंगे।

शेरशाह का प्रथम संघर्ष घक्करों (सिंधु तथा झेलम के बीच बसे उत्तर-पश्चिम सीमा के निवासी) के साथ हुआ। लेकिन शेरशाह को अपने इस अभियान में कोई खास सफलता प्राप्त न हो पाई। घक्करों ने कड़ा संघर्ष किया। बंगाल का गवर्नर खिज्र खाँ भी स्वतंत्र होने के लिए प्रयत्न करने लगा जिसके कारण उसे पंजाब से पीछे हटना पड़ा और उसने 1541 में बंगाल की ओर प्रस्थान किया। जहाँ उसने खिज्र खाँ को अपदस्थ कर दिया। शेरशाह का अगला लक्ष्य मालवा था जहाँ कादिर शाह उसके विरुद्ध षड्यंत्ररत था। मार्ग में उसने अब्दुल कासिम को हराकर ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। कादिर शाह ने भी आत्मसमर्पण कर दिया और उसे 1542 में गिरफ्तार कर लिया गया। राजपूत समस्या का समाधान करने के लिए सर्वप्रथम उसने रायसेन (1543) पर अधिकार कर लिया। रायसेन का राजा पूरनमल यद्यपि शेरशाह की संप्रभुता को स्वीकार करने के लिए तैयार था लेकिन शेरशाह ने उस पर आक्रमण कर दिया जिससे पूरणमल कई अन्य सिपाहियों के साथ युद्ध में मारा गया।

1543 में मुल्तान प्रांत को भी विजित कर लिया गया। रायसेन के युद्ध में राजपूतों की पराजय के बावजूद मेवाड़ का राजा मालदेव अभी भी काफी शक्तिशाली था। उसने अपने प्रभुत्व का प्रसार साम्भर, नागौर, बीकानेर, अजमेर तथा बेदनार तक कर दिया था। शेरशाह ने उसकी ओर कूच किया और 1544 में अजमेर, पाली तथा माउंट आबू पर अधिकार कर लिया। चित्तौड़ के शासक उदय सिंह ने भी बिना किसी विशेष विरोध के चित्तौड़ शेरशाह को सौंप दिया। इस प्रकार लगभग संपूर्ण राजपूताना उसके अधीन हो गया। शेरशाह को कालिंजर के अजेय दुर्ग पर भी अधिकार करने में सफलता प्राप्त हुई। लेकिन जिस समय वह इस दुर्ग पर अपना अधिकार करने का प्रयत्न कर रहा था शेरशाह एक विस्फोट में घायल हो गया और इस घटना के बाद शीघ्र ही उसकी मृत्यु (22 मई, 1545) हो गई। इस प्रकार शेरशाह के शानदार जीवन का अंत हो गया।

शेरशाह के पुत्र इस्लाम शाह (1545-1553) ने हालांकि अपने पिता के साम्राज्य को बनाए रखा किंतु वह साम्राज्य का और अधिक विस्तार तथा सुदृढ़ीकरण न कर सका। उसका अधिकतर समय अपने ही खेमे के उन आंतरिक षड्यंत्रों को दबाने में ही व्यतीत हो गया जिनका नेतृत्व उसका भाई आदिल शाह, आज़म हुमायूँ तथा खव्वास खाँ के साथ मिलकर कर रहा था। इसके अतिरिक्त उसके अफगान कुलीनों, विशेषकर नियाज़ी अफगानों, के साथ अपमानजनक व्यवहार से मदद की बजाय उनमें उसके विरुद्ध विरोध को बढ़ावा मिला। जिसका परिणाम उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारियों को झेलना पड़ा। इस्लाम शाह द्वारा अपनी मृत्यु (1553) के पश्चात् अपने पुत्र को सरलता से उत्तराधिकारी बनाने के लिए मार्ग को प्रशस्त करने के प्रयत्नों के बावजूद यह नवीन अफगान साम्राज्य आंतरिक कलहों की चपेट में आ गया, जो हुमायूँ के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। इस्लाम शाह की मृत्यु के तुरंत बाद मुबारक खाँ ने इस्लाम शाह के पुत्र फिरोज़ की हत्या कर दी और आदिल शाह के नाम से स्वयं सत्तारूढ़ हो गया। विद्रोह एवं षड्यंत्र संपूर्ण राज्य में व्याप्त हो गए। अंततः साम्राज्य 'पांच' भागों में विभाजित हो गया (अहमद खाँ सूर पंजाब में; इब्राहिम शाह सम्भल तथा दोआब में; आदिल शाह चुनार तथा बिहार में; मालवा में बाज बहादुर और सिकंदर शाह आगरा तथा दिल्ली में)। इन परिस्थितियों ने हुमायूँ को पुनः आक्रमण करने के लिए आदर्श पृष्ठभूमि प्रदान की।

सूर प्रशासनिक व्यवस्था

मुगल प्रशासनिक ढाँचे की विकास प्रक्रिया में अफगान अंतराल (1540-1555) का विशेष महत्व है। शेरशाह सूर के काल में एक ऐसी नौकरशाही के निर्माण का प्रयोग किया गया जो केंद्रीकृत, निरंकुश राज्य व्यवस्था के अधीन कार्य करती थी। अकबर ने इस व्यवस्था को निश्चित रूप प्रदान किया।

शेरशाह के केंद्रीय प्रशासन की कार्यपद्धति के बारे में हमारे स्रोतों में सीमित जानकारी मिलती है। परंतु वह एक निरंकुश शासक था और राज्य के सभी कार्य अपने प्रत्यक्ष निरीक्षण और नियंत्रण में रखता था। अतः अपनी योग्यता के कारण वह स्वयं तो इस प्रकार की निरंकुश व्यवस्था को ठीक ढंग से चला सका परंतु उसके उत्तराधिकारी उसके समान योग्य सिद्ध न हो सके।

शेरशाह सम्भवतः अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) के शासन के इतिहास से प्रेरित था। उसने सुल्तान के अधिकांश नियमों और कानूनों को अपनाया, हालांकि खलजी के समान उसने उन्हें लागू करने के लिए उतनी कठोरता नहीं अपनायी। दोआब क्षेत्र में *सरकार* (खलजियों के *शिक* का पर्याय) प्रशासनिक व राजस्व की इकाई थी, जबकि प्रतिरक्षा एवं प्रशासन की सहूलियत के लिए बंगाल, मालवा, राजपूताना, सिंध और मुल्तान जैसे दूरस्थ क्षेत्रों में प्रशासनिक इकाई के रूप में ***विलायत*** की व्यवस्था को कायम रखा गया। एक *विलायत* में कई *सरकारें* होती थीं। एक *सरकार* के अंतर्गत कई ***परगने*** होते थे, प्रत्येक *परगने* में कई गाँव होते थे। गाँव मूलतः राजस्व की प्राथमिक इकाई था।

सरकार या *विलायत* में नियुक्त अमीरों को असीमित अधिकार नहीं दिए जाते थे। नये नियमों और कानूनों को लागू करने के लिए उन्हें हमेशा शाही *फरमान* के जरिए निर्देश भेजे जाते थे। जासूस पदाधिकारियों के व्यवहार की सूचना सुल्तान को देते रहते थे। सही ढंग से काम न करने वाले पदाधिकारियों को दंड दिया जाता था। उदाहरण के लिए, बंगाल के गवर्नर खिज्र तुर्क को इस

कारण से बर्खास्त कर जेल में डाल दिया गया क्योंकि उसने शेरशाह की अनुमति के बिना बंगाल के भूतपूर्व सुल्तान की बेटी से शादी कर ली थी और स्वतंत्रता जाहिर करने की कोशिश की थी।

परगना का प्रभारी *शिक़दार* कहलाता था। *परगना* स्तर पर राजस्व वसूल करना उसकी मुख्य जिम्मेदारी थी। शेरशाह के काल में उसका हमेशा स्थानांतरण होता रहता था। उसकी सहायता के लिए दो *कारकुन* (क्लर्क) होते थे, जो हिंदी और फारसी दोनों में लेखा-जोखा रखते थे। भूमि, आदि नापने का काम *मुंसिफ* के जिम्मे था। *शिक़दार* और *मुंसिफ* दोनों की नियुक्ति सीधे सम्राट द्वारा होती थी। *परगना* स्तर के राजस्व ब्यौरों का रख-रखाव *कानूनगो* करता था। वह अनुवांशिक अर्ध-सरकारी पदाधिकारी था। *परगना* के खजाने का जिम्मा *फोतेदार* के पास होता था।

कई *परगनों* को मिलाकर प्रशासनिक इकाई *सरकार* (*शिक़*) बनती थी, जिसका प्रमुख अधिकारी *शिक़दार-ए शिक़दारान* होता था। वह एक सरकार के सभी *शिक़दारों* का प्रमुख पर्यवेक्षक तथा प्रशासनिक अधिकारी था। *मुंसिफ-ए मुंसिफान सरकार* (*शिक़*) स्तर का अधिकारी था। इसका कार्यक्षेत्र मुगल शासन के ***अमीन*** की भांति था। शेरशाह के साम्राज्य में 66 *सरकारें* (*शिक़ें*) थीं।

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गाँव थे। कई गाँवों को मिलाकर एक *परगना* और कुछ *परगनों* को मिलाकर एक *शिक़* बनता था, जो मुगल प्रशासनिक इकाई *सरकार* के बराबर था। कुछ इलाकों जैसे पंजाब, बंगाल, मालवा, आदि में कई *शिक़ों* को मिलाकर एक पदाधिकारी के अधीन रखा जाता था। इस पदाधिकारी की तुलना मुगल *सूबेदार* के साथ की जा सकती है। *मुकद्दम* गाँव का मुखिया होता था, जो राज्य और गाँव के बीच कड़ी का काम करता था। हालांकि वह सरकारी नौकर नहीं था, फिर भी अपने गाँव की कानून और व्यवस्था की देखभाल के लिए वही उत्तरदायी था। *पटवारी* गाँव के सभी ब्यौरों का लेखा-जोखा रखता था। *मुकद्दम* की तरह वह भी राज्य का नहीं गाँव का सेवक होता था।

शेरशाह ने न्याय प्रशासन को विशेष महत्व दिया। मुसलमानों के दीवानी मामलों का निपटारा *काज़ी* तथा फौजदारी मामलों का निपटारा *शिक़दार* करता था। अपराधों का पता लगाने की प्रमुख जिम्मेदारी *मुकद्दम* पर होती थी। जिस गाँव में अपराध होता था, उसका *मुकद्दम* अगर अपराधी को पकड़ने में सफल नहीं होता था तो स्वयं दंड का पात्र हो सकता था।

इसी प्रकार शेरशाह को जिन क्षेत्रों में विरोध की आशंका थी, उन क्षेत्रों में उसने अफगानों को बसाकर अफगान क्षेत्र स्थापित किए। यह उसकी राजत्व नीति की प्रकृति को प्रतिबिंबित करता है। उदाहरण के लिए, शेरशाह के शासनकाल में ग्वालियर अफगानों की एक मुख्य बस्ती थी। संक्षेप में, सभी दृष्टियों से शेरशाह एक निरंकुश शासक था।

शेरशाह ने अपने कुलीनों की नियुक्ति में यह खास ध्यान रखा कि एक ही प्रजाति या समुदाय के लोगों का वर्चस्व न हो जाए। उसने विभिन्न संप्रदायों से कुलीनों की भर्ती की ताकि उसके शासन को किसी गंभीर चुनौती का सामना न करना पड़े। कोई भी समूह इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह शासक पर किसी प्रकार का दबाव डाल सके। हम पाते हैं कि खव्वास खाँ, हाजी खाँ और हबीब खाँ सुल्तानी जैसे गैर-अफगान अमीरों को महत्वपूर्ण प्रांत और बड़े '*इक्ते*' सौंपे गए थे। इससे पता चलता है कि शेरशाह ने कभी भी शुद्ध अफगान कुलीन वर्ग की स्थापना को महत्व नहीं दिया।

शेरशाह की मृत्यु के बाद उसका दूसरा बेटा राजकुमार जलाल खाँ इस्लाम शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। उसने कई वरिष्ठ और अनुभवी अमीरों को निष्कासित कर दिया जिन्होंने उसके बड़े भाई आदिल खाँ का समर्थन किया था। उन्हें निकालने के बाद इस्लाम शाह अपने राजनीतिक विचारों को व्यावहारिक रूप देने के लिए स्वतंत्र था। उसने अपनी राजधानी आगरा के बजाय ग्वालियर बनाई और चुनार से अपने पिता का खजाना भी ले आया। इस प्रकार दिल्ली की तरह ग्वालियर भी हिंद-इस्लामी संस्कृति का केंद्र बना।

यह उल्लेखनीय है कि साम्राज्य की राजनीतिक व्यवस्था को केंद्रीकृत करने में इस्लाम शाह शेरशाह से एक कदम और आगे बढ़ गया। उसने सभी अमीरों से *इक्ते* वापस ले लिए और पूरे साम्राज्य को *खालिसा* के अंतर्गत व्यवस्थित किया गया। उसने अपने अधिकारियों को *इक्तों* की जगह नगद वेतन देना शुरू किया। कुलीन वर्ग और सेना को उसने नए स्तरों में पुनर्गठित किया। सैनिकों के सही रखरखाव के निरीक्षण और उनकी देखभाल करने के लिए तथा कुलीनों के लिए जरूरी अस्त्र-शस्त्रों

की पूर्ति के लिए उन्हीं में से पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। कुलीनों को युद्ध में काम में लाए जाने वाले हाथी रखने की इजाजत नहीं दी गई थीः वह राजा का विशेषाधिकार था।

इस्लाम शाह अपने कुलीनों से बड़ी कड़ाई से पेश आता था, पर वह जनता के प्रति उदार था। उसने जनता के जीवन और संपत्ति को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की। अगर किसी व्यक्ति की हत्या हो जाती थी या उसकी संपत्ति को कोई हानि पहुंचती थी, तो इसके लिए उस इलाके के पदाधिकारी को जिम्मेदार ठहराया जाता था। अतः पदाधिकारी अपने क्षेत्र में दोषी व्यक्तियों को गिरफ्तार करने में बहुत मुस्तैदी दिखाते थे। अपने पिता के समान इस्लाम शाह ने अपने साम्राज्य में निष्पक्ष न्याय व्यवस्था की स्थापना भी की।

5.7 भारत में मुगल शासन की पुनःस्थापना

कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ की पराजय के बाद असकरी मिर्ज़ा तथा कामरान उत्तर-पश्चिम में चले गए किंतु हिन्दाल तथा यादगार नासिर मिर्ज़ा ने हुमायूँ का साथ देने का निर्णय किया। हुमायूँ ने सर्वप्रथम सिंध में अपना भाग्य आजमाने का प्रयत्न किया। लेकिन यहाँ हिन्दाल मिर्ज़ा ने भी उसका साथ छोड़ दिया और वह कामरान के निमंत्रण पर कंधार चला गया। सिंध के शासक शाह हुसैन अर्घुन ने यादगार नासिर मिर्ज़ा के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर उसको भी अपने साथ मिला लिया। इस बीच हुमायूँ सेहवान पर अधिकार करने में असफल रहा। इन सभी घटनाक्रमों से निराश होकर हुमायूँ ने अकेले ही अपना भाग्य राजपूताना में आज़माने का निर्णय किया। मारवाड़ के शासक मालदेव ने हुमायूँ को आमंत्रित किया (जुलाई 1542)। लेकिन शेरशाह ने मालदेव पर हुमायूँ को उसे देने के लिए दबाव डाला। हुमायूँ भयवश भाग गया (अगस्त 1542)। राजपूत शासक राणा बीरसल द्वारा उसका स्वागत किया गया। हुमायूँ ने राणा बीरसल की मदद से एक बार फिर सिंध में अपने भाग्य की परीक्षा लेने की ठानी, किंतु इस बार भी असफल रहा। अब उसने गज़नी के मार्ग से ईरान की ओर प्रस्थान किया (दिसम्बर, 1543)। ईरान के शासक शाह तहमस्प द्वारा उसका गर्मजोशी के साथ स्वागत किया गया (1544)। ईरान के शाह ने हुमायूँ से वायदा किया कि अगर वह उसको कंधार दे देगा तब वह उसकी कंधार, काबुल एवं गज़नी पर अधिकार करने में सहायता करेगा। हुमायूँ इसके लिए तैयार हो गया। शीघ्र ही हुमायूँ ने कंधार पर अधिकार कर लिया जो उस समय असकरी मिर्ज़ा के अधीन था और उसे शाह के हवाले कर दिया।

लेकिन दोनों के मध्य गलतफहमियाँ प्रारंभ हो गईं क्योंकि ईरानियों ने काबुल एवं गज़नी पर अधिकार करने में हुमायूँ की मदद करने में कोई जल्दबाजी नहीं दिखाई। इससे बाध्य होकर हुमायूँ ने ईरानियों से कंधार छीन लिया (1545)। कंधार में हुमायूँ की सफलता ने कई कुलीनों को, विशेषकर हिन्दाल तथा यादगार नासिर मिर्ज़ा को पुनः उसके पक्ष में कर दिया। इस घटनाक्रम से भयभीत होकर कामरान काबुल से गज़नी भाग गया और वहाँ से सिंध। इस कारण हुमायूँ सरलता से काबुल में (नवंबर, 1545) प्रवेश कर सका। 1545 से 1553 के मध्य हुमायूँ ज्यादातर अपने भाई कामरान की शक्ति का दमन करने में ही व्यस्त रहा। जिसने हुमायूँ को लगातार संकट में डाले रखा। इस संघर्ष में ही उसका भाई हिन्दाल मिर्ज़ा मारा गया (1551)। इससे उत्तेजित होकर हुमायूँ ने कामरान पर अंतिम प्रहार करने का निर्णय लिया। कामरान ने इस संघर्ष में इस्लाम शाह से सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया किंतु वह सफल ना हो सका। जिस समय मिर्ज़ा कामरान एक स्थान से दूसरे स्थान अपने बचाव में दौड़ रहा था उसको घक्कर अमीर सुल्तान आदम ने गिरफ्तार कर हुमायूँ के हवाले कर दिया। अंत में हुमायूँ ने कामरान को अंधा करने का हुकुम दिया और उसे मक्का जाने की आज्ञा दी गई (जहाँ पर अक्टूबर, 1557 में उसकी मृत्यु हो गई)।

कामरान के विरोध का अंत हो जाने पर हुमायूँ काबुल का सार्वभौमिक स्वामी बन गया। अब भारत में अनुकूल राजनैतिक परिस्थिति देख हुमायूँ अपने खोए साम्राज्य को पुनः स्थापित करने के लिए व्यवस्थित ढंग से योजना बना सकता था। उसने नवंबर 1554 में लाहौर की ओर प्रस्थान किया और फरवरी 1555 में वहाँ पहुंच गया। थोड़ी बहुत मुश्किलों के बावजूद मुगल सेना का विजय अभियान जारी रहा। उसने शीघ्र ही माच्छीवाड़ा पर अधिकार कर लिया। अंतिम संघर्ष सरहिंद में हुआ। सिकंदर शाह सूर को शिवालिक की पहाड़ियों की ओर भागना पड़ा। इस प्रकार दिल्ली प्रस्थान के

लिए मार्ग साफ हो गया। हुमायूँ जून 1555 में सलीमगढ़ पहुँचा और दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया। किंतु हुमायूँ अभी अपने विजय अभियान को पूर्ण एवं सुदृढ़ भी न कर पाया था कि शीघ्र ही 26 जनवरी 1556 को उसकी मृत्यु हो गई। वह अपने पीछे अपने नाबालिग पुत्र अकबर को विपरीत परिस्थितियों में अकेला छोड़ गया।

बोध प्रश्न-3

1) बहादुर शाह के साथ हुमायूँ के संघर्ष की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

.....

.....

.....

2) शेरशाह के विरुद्ध हुमायूँ की असफलता के कारणों को बताइए।

.....

.....

.....

3) हुमायूँ के अपने भाइयों के साथ संबंधों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

.....

.....

.....

4) उन परिस्थितियों का विवरण कीजिए जिनके कारण हुमायूँ को अपने खोए साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने में सफलता मिली।

.....

.....

.....

5.8 सारांश

16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अफगानों और खासकर लोदी वंश की राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभुता बनी रही। मुगलों का आगमन भी हो चुका था परन्तु वे अफगान राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रहे थे। वस्तुतः यह काल अस्थिरता का युग था। अफगान अमीर सुल्तान की निरंकुशता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इस काल की राजनीतिक घटनाओं के पीछे इस तथ्य का बहुत बड़ा हाथ रहा है। राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल, बहलोल, अफगान अमीरों के द्वारा पूर्ण रूप से नियंत्रित था। सिकंदर ने कुलीनों की कमर तोड़ी पर वह समझौते के लिए तैयार रहता था। परन्तु इब्राहिम लोदी और बाद में सूर शासकों ने निरंकुश केंद्रीकृत राजतंत्र की स्थापना की और कुलीनों को सुल्तान का मातहत बना दिया। राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद समृद्धि और आर्थिक स्थिरता थी।

इस इकाई में हमने बाबर के आक्रमण की पूर्व संध्या पर व्याप्त भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया। यह स्वीकार करना गलत होगा कि भारत की राजनीति के निर्धारण में धार्मिक हितों की प्रमुख भूमिका थी, अपितु उसके निर्धारण में तत्कालीन परिस्थितियों एवं व्यक्तिगत हितों ने प्रमुख भूमिका निभाई। लेकिन पानीपत में बाबर की सफलता के पश्चात् भी उसका मार्ग सरल नहीं था। उसे न केवल राजपूत स्वायत्त सरदारों/राजाओं अपितु निराश अफगानों का भी सामना करना था। इन संघर्षों के दौरान बाबर के विरुद्ध जो गठबंधन बनाए गए उनमें धर्म प्रमुख आधार नहीं था। हम देख चुके हैं कि 'महासंघ' में अफगान एवं राजपूत दोनों थे। यह बाबर का महान् नेतृत्व ही था कि विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वह सफल रहा। हुमायूँ अपने पिता के समान महान् सेनापति नहीं था। अतः वह अफगानों के संयुक्त मार्चे का सामना न कर सका। इस प्रकार वह एक समय (1540) अपने पिता के साम्राज्य को बनाए न रख सका।

परिणामस्वरूप उसको भारत छोड़ना पड़ा और वह लगभग 13 वर्षों तक वनवास की स्थिति में भटकता रहा। इस दौरान हमने एक महान् अफगान – शेरशाह – का उत्थान देखा। यद्यपि शेरशाह ने मात्र पाँच वर्षों तक शासन किया किंतु उसने इतिहास पर अपनी सफलता की अमिट छाप छोड़ी। उसने न केवल एक ऐसे मजबूत प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण किया जिसका अकबर द्वारा अनुसरण किया गया तथा उसने इसे और मजबूती प्रदान की, बल्कि इसी ढाँचे की बदौलत वह संपूर्ण उत्तर भारत को एक प्रशासनिक इकाई के अंतर्गत ला सका। लेकिन शेरशाह के उत्तराधिकारी उसके साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने में असफल रहे। उनके व्यक्तिगत षड्यंत्रों एवं व्याप्त अराजकता ने हुमायूँ को हमला करने का शानदार अवसर प्रदान किया। इस बार उसने कोई गलती नहीं की। उसने 1555 में पुनः सत्ता प्राप्त की। किंतु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। अतः साम्राज्य के सुदृढ़ीकरण के कार्य को वह अपने पुत्र अकबर के लिए छोड़ गया। इसके बाद की परिस्थितियों के बारे में हम अगली इकाई में पढ़ेंगे।

5.9 शब्दावली

अमीन	राजस्व निर्धारित करने वाला पदाधिकारी
बाबरनामा	बाबर की आत्मकथा, इसे *तुजुक-ए बाबरी* भी कहा जाता है
मुक्ती	गवर्नर, *इक्ताधारी*
परगना	कई गाँवों को मिलाकर बनाई गई एक प्रशासनिक इकाई
सरकार	कई *परगनों* को मिलाकर *सरकार* का प्रशासनिक क्षेत्र बनता था। *परगना* और *सरकार* के बीच *शिक* होता था, परन्तु अकबर और उसके बाद के काल में *शिक* का उपयोग नहीं किया गया
वज़ीर	प्रधानमंत्री
विलायत	प्रांत। इस काल में प्रांत सुपरिभाषित प्रशासनिक इकाई नहीं थे। 1580 में पहली बार अकबर के शासनकाल में सुपरिभाषित प्रांतों (*सूबे*) का उदय हुआ

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 5.2

2) (1) ग-कड़ा का गवर्नर; (2) क-बिहार का गवर्नर; (3) घ-कालपी का गवर्नर; (4) ख-पंजाब का गवर्नर

3) देखें उप-भाग 5.3.1

4) देखें उप-भाग 5.3.2

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 5.4

2) देखें उप-भाग 5.4.1

3) देखें उप-भाग 5.4.2

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 5.5.1

2) देखें उप-भाग 5.5.2

3) देखें उप-भाग 5.5.3

4) देखें भाग 5.7

5.11 संदर्भ ग्रंथ

हसन, मोहिबुल, (1985) *बाबर फाउंडर ऑफ द मुगल एंपायर इन इंडिया* (नई दिल्लीः मनोहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स).

पांडे, अवध बिहारी, (1956) *द फर्स्ट अफगान एंपायर इन इंडिया (1451-1526 ए डी)* (नई दिल्लीः बुकलैंड लिमिटेड).

सिद्दीकी, इक्तिदार हुसैन, (1969) *सम आस्पैक्टस ऑफ अफगान डेस्पॉटिज़्म इन इंडिया* (अलीगढः थ्री मैन पब्लिकेशन).

त्रिपाठी, आर. पी., (1963) *राइज एंड फॉल ऑफ द मुगल एंपायर* (इलाहाबादः सेंट्रल बुक डिपो).

5.12 शैक्षणिक वीडियो

टॉकिंग हिस्ट्री । 8। दिल्लीः द फाउंडेशन ऑफ मुगल एंपायर। राज्यसभा टी वी
https://www.youtu.be/anQWopp1NCo

टॉकिंग हिस्ट्री । 9। दिल्लीः द मुगल एंपायर अंडर हुमायूँ। राज्यसभा टी वी
https://www.youtu.be/SeCpvMT_vA4

इकाई 6 मुग़ल साम्राज्य विस्तारः युद्ध तथा गठबंधन*

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सत्ता की राजनीति और बैरम खाँ का संरक्षण कालः 1556-1560

6.3 अकबर के अधीन क्षेत्रीय प्रसार

- 6.3.1 उत्तर तथा मध्य भारत
- 6.3.2 पश्चिम भारत
- 6.3.3 पूर्वी भारत
- 6.3.4 1581 के विद्रोह
- 6.3.5 उत्तर-पश्चिम की विजयें
- 6.3.6 दक्खन तथा दक्षिण भारत

6.4 अकबर के उत्तराधिकारियों के अधीन क्षेत्रीय विस्तार

6.5 स्वायत्त सरदारों के प्रति नीतियाँ

6.6 मुगल तथा उत्तर-पश्चिमी सीमाः वैश्विक एवं क्षेत्रीय अवधारणा

6.7 मुग़लों के उज़बेगों के साथ संबंध

- 6.7.1 बाबर और हुमायूँ
- 6.7.2 अकबर
- 6.7.3 जहाँगीर
- 6.7.4 शाहजहाँ

6.8 मुगलों के ईरान के साथ संबंध

- 6.8.1 बाबर तथा हुमायूँ
- 6.8.2 अकबर
- 6.8.3 जहाँगीर
- 6.8.4 शाहजहाँ

6.9 दक्खनी राज्य एवं ईरानी-मुगल कशमकश

6.10 औरंगज़ेब तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा

6.11 सारांश

6.12 शब्दावली

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.14 संदर्भ ग्रंथ

6.15 शैक्षणिक वीडियो

* डॉ. मीना भार्गव, इतिहास विभाग, इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली; और प्रो. मंसूरा हैदर, सेंटर ऑफ एडवान्स्ड स्टडी इन हिस्ट्री, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

यह इकाई इग्नू के पाठ्यक्रम ई.एच.आई.-04: *भारत 16वीं सदी से 18वीं सदी के मध्य तक*, खंड 2, इकाई 5, 6 और 7 से ली गई है।

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- बैरम खाँ के संरक्षण का किस प्रकार से अंत हुआ और अकबर ने कैसे राज्य के मामलों को अपने नियंत्रण में कर लिया, का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- अकबर और उसके उत्तराधिकारियों के काल में मुग़ल साम्राज्य के क्षेत्रीय प्रसार का आकलन कर सकेंगे,
- साम्राज्य के प्रसार के समय मुग़लों को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा उसका विश्लेषण कर सकेंगे,
- मुग़ल सम्राटों एवं स्वायत्त सरदारों के संबंधों की तथा इसने कैसे साम्राज्य के प्रसार एवं सुदृढ़ीकरण में मदद की, को समझ कर सकेंगे,
- मुग़ल तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा के मध्य संबंधों का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- उत्तर-पश्चिम सीमा के भौगोलिक महत्व तथा वैश्विक एवं क्षेत्रीय दृष्टिकोण जिसने त्रिपक्षीय संबंधों को एक स्वरूप प्रदान किया एवं सुनिश्चित किया, को समझ सकेंगे,
- मुगल-उज़बेग संबंधों के मुख्य चरणों का मूल्यांकन कर सकेंगे, और
- मुगल तथा सफ़ावी संबंधों के विभिन्न चरणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

हुमायूँ ने मुग़ल साम्राज्य का उद्धार कर उसे सन् 1555 में पुनः स्थापित किया। लेकिन अगर अकबर न होता तो साम्राज्य को बनाए रखना संभव न हो पाता। अकबर के शासनकाल में ही मुग़ल साम्राज्य एक राजनीतिक वास्तविकता बन पाया और उसने भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। अकबर के उत्तराधिकारियों ने कुछ परिवर्तनों के साथ उसकी नीतियों को अपनाया या यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने समय के राजनीतिक वातावरण के अनुरूप नीतियाँ अपनाईं।

इस इकाई में हम प्रशासनिक व्यवस्था एवं शासक वर्ग के उद्भव की विस्तृत चर्चा नहीं करेंगे (इसकी विस्तृत विवेचना **खंड III** में की जाएगी)। इस इकाई में मुख्य रूप से क्षेत्रीय प्रसार एवं इससे जुड़ी समस्याओं तक ही हम स्वयं को सीमित रखेंगे। एक विशाल साम्राज्य के रूप में विकसित होने के दौरान मुग़ल शासकों को ऐसी राजनीतिक शक्तियों के साथ जूझना पड़ा जिनका कई क्षेत्रों में आधिपत्य कायम था। इनमें राजपूत, विंध्यपर्वत श्रृंखला के दक्षिण में स्थित बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर और मराठा शासक महत्वपूर्ण थे। लेकिन यहाँ हम मुगल-राजपूत, मुगल मराठा संबंधों तथा मुगल शासकों की दक्खन नीति की चर्चा नहीं करेंगे। इन सब पर विस्तृत चर्चा हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-112** में की गई है।

यह इकाई मुगलों की उत्तर-पश्चिम सीमांत नीति की भी चर्चा करती है। हिमालय पर्वत, हिंद-महासागर, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी द्वारा घेरे-बंदी से भारत की तीन दिशाओं से प्राकृतिक सुरक्षा होने के साथ-साथ उत्तर-पश्चिमी सीमाओं की ओर से असुरक्षित होने के कारण इस दिशा से लगातार भारत को बाह्य खतरों का सामना करना पड़ता था। हिन्दुकुश पर्वतों के पार के क्षेत्रों में ईरान, काबुल एवं ट्रांसऑक्सियाना स्थित थे। इसी मार्ग से होकर यूनानी, हूण, तुर्क, मुगल तथा अन्य आक्रमणकारी कुछ अंतराल के बाद लगातार आते रहे। अपनी सत्ता को स्थापित करने के बाद मुग़लों ने अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा के प्रति गंभीरता से ध्यान दिया। अकबर ने अपने सैनिक अभियानों का संचालन अपने साम्राज्य को मजबूत एवं सुदृढ़ करने के लिए भारत की सीमाओं के अंदर ही किया और वह हिंदुकुश या होरमुज की सीमाओं से बाहर नहीं गया। अपने शासन के प्रारंभ से ही अकबर काबुल एवं कंधार को इस कारण से अपने अधीन करना चाहता था जिससे कि किसी भी बाह्य आक्रमण के समय वह ढाल का काम करें। अबुल फज़ल ने इस वास्तविकता पर बल दिया कि काबुल एवं कंधार दोनों भारत के दोहरे प्रवेश द्वार थे। एक ईरान को तो दूसरा मध्य एशिया की ओर

जाता था। इससे पूर्व बाबर ने भी इस वास्तविकता का विवरण अपने संस्मरण *बाबरनामा* में किया था। बाद के इतिहासकारों जैसे सुजान राय भंडारी ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए। जहाँ एक ओर अकबर तथा उसके पूर्ववर्ती शासकों को अपनी मातृभूमि से अथाह प्रेम था, वहीं उसके उत्तराधिकारी बिना किसी सोच-विचार के साम्राज्यवादी अभिलाषा को पूरा करने में उलझ गए तथा इस नीति के कारण शाहजहाँ के अधीन भेजे गए उत्तर-पश्चिमी सैनिक अभियान के कारण मुग़ल साम्राज्य को भारी मूल्य चुकाना पड़ा। ईरान तथा मध्य एशिया के साथ मुगलों के संबंधों को जहाँ एक आंतरिक राजनीतिक घटनाक्रम ने सुनिश्चित किया वहीं उनको उनकी अपनी त्रिपक्षीय आवश्यकताओं, वैश्विक तथा क्षेत्रीय अवधारणाओं एवं मान्यताओं ने भी प्रभावित किया।

इस इकाई में हम अपनी विवेचना का प्रारंभ अकबर से करते हैं कि कैसे उसने अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त की और किस प्रकार से अपनी सर्वोच्चता को मुग़ल दरबार में स्थापित किया। आइए सर्वप्रथम हम बैरम खाँ के सरंक्षण काल की चर्चा करते हैं।

6.2 सत्ता की राजनीति और बैरम खाँ का संरक्षण कालः 1556-1560

हुमायूँ की मृत्यु के समय अकबर की आयु मात्र 13 वर्ष थी। हुमायूँ के विश्वासपात्र एवं अकबर के शिक्षक बैरम खाँ ने 1556-1560 तक उसके **संरक्षक** के रूप में कार्य किया। बैरम खाँ के संरक्षण काल को चार भागों में विभाजित किया जा सकता हैः प्रथम अकबर के सिंहासन ग्रहण करने से पानीपत के युद्ध से पूर्व अर्थात जनवरी 1556 से अक्टूबर 1556 तक। यह वह समय था जबकि अभिजात वर्ग ने अपने हितों की रक्षा करने के लिए बैरम खाँ के नेतृत्व को स्वीकार किया। दूसरा चरण पानीपत की लड़ाई के बाद भारत में शाही महिलाओं (हमीदा बानो बेगम और माहम अनगा) के आगमन तक का था। इस समय के दौरान बैरम खाँ ने राज्य के मामलों पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया। उसने अपने व्यक्तिगत समर्थकों का एक गुट बनाने का प्रयास किया। तीसरा चरण, जो 1559 के मध्य तक था, में बैरम खाँ की शक्ति एवं प्रभाव का ह्रास हुआ। अंतिम चरण में बैरम खाँ ने पुनः अपने नियंत्रण को स्थापित करने का प्रयास किया। इसी समय में गुटों के मध्य तनाव भी बढ़ा जिसके कारण बैरम खाँ को सत्ता से निरस्त कर दिया गया।

राजनीतिक तौर पर, प्रथम चरण असुरक्षा का था। इस समय में ना केवल हुमायूँ की मृत्यु हुई अपितु साम्राज्य को हेमु की अफगान सेनाओं का सामना करना पड़ा। इस समय अकबर काफी छोटा था जिसके कारण इन घटनाओं से निराशा का वातावरण छा गया। इस स्थिति से सुरक्षित बचने का उपाय सम्राट के लिए एक संरक्षक की नियुक्ति करना था। लेकिन इस बात का भय था कि यदि किसी अभिजात को एक संरक्षक के रूप में नियुक्त किया जाता तो इससे अभिजात वर्ग के पारस्परिक संबंधों में तनाव उत्पन्न होगा जिससे प्रशासन को खतरा पैदा हो सकता था। इन सभी खतरों के बावजूद बैरम खाँ को *वकील* नियुक्त किया गया। आश्चर्य की बात यह है कि किसी भी अभिजात सदस्य ने बैरम खाँ की नियुक्ति का विरोध नहीं किया, यहाँ तक कि अभिजात वर्ग के उन सदस्यों द्वारा भी नहीं जो अपनी लंबी सेवा, रक्त संबंधी रिश्ते या अकबर के साथ पूर्ववर्ती निकटता के आधार पर *वकालत* के लिए दावा प्रस्तुत कर सकते थे। इसमें बैरम खाँ के कड़े आलोचक भी शामिल थे।

कुलीनों के द्वारा बैरम खाँ को संरक्षक स्वीकार करने में ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे उसके साथ सत्ता एवं प्रभाव में भागीदारी चाहते थे। दूसरी ओर बैरम खाँ स्वयं सत्ता का उपयोग करने के लिए कृतसंकल्प था। *वकील-उस सल्तनत* का पद ग्रहण करने पर बैरम खाँ को सत्ता के लिए गुटीय संघर्ष की आशंका थी। इसलिए उसने उन सभी कुलीनों के प्रभाव को समाप्त करने का निश्चिय किया जो उसको चुनौती दे सकते थे। उसने अपने कड़े आलोचक शाह अबुल माली को पदमुक्त कर जेल में डाल दिया। माली कुलीनों के बीच अलोकप्रिय था जिसके कारण बैरम खाँ की कार्यवाही का कोई विशेष विरोध नहीं हुआ।

आगे चलकर ऐसे सभी कुलीनों को काबुल भेज दिया गया जो बैरम खाँ के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते थे। हालांकि, बैरम खाँ ने काबुल के गवर्नर मुनीम खाँ तथा अवध में स्थित मुग़ल सेना के प्रधान अली कुली खाँ उज़बेग के समर्थन को भी प्राप्त करने के प्रयास किए। बैरम खाँ को मुनीम खाँ पर

विश्वास न था। वह उसको काबुल तक सीमित कर दरबार से दूर रखना चाहता था। जिस समय मई 1556 में मिर्ज़ा सुलेमान ने काबुल पर आक्रमण किया तब उसे मुनीम खाँ को अलग करने का अवसर प्राप्त हो गया। इस घटना ने आगामी 4 माह तक मुनीम खाँ के दरबार के साथ संपर्कों को काट कर रखा और इस बीच बैरम खाँ ने अपनी स्थिति को दरबार में और सुदृढ़ करने में लगाया।

कुलीनों के बीच लगातार तनाव बढ़ रहे थे और पानीपत के द्वितीय युद्ध के समय तक यह संकट और भी गहरा हो गया था। तारदी बेग के नेतृत्व में शाही सेनाएँ तुगलकाबाद के युद्ध में अफगान सेनाओं का सामना करने में असफल रहीं। इस अवसर का लाभ उठाते हुए बैरम खाँ ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के लिए विश्वासघात का आरोप लगाकर सम्राट की आज्ञा के बिना तारदी बेग को फांसी देने का आदेश दिया। इससे कुलीन वर्ग में असंतोष बढ़ने लगा। किंतु पानीपत के युद्ध में सफलता ने उसके सम्मान को पुनः स्थापित करने में सहायता प्रदान की। उसने अपने विश्वासपात्रों को उपाधियाँ एवं दोआब में *जागीरें* तथा तरक्की प्रदान कर अपनी स्थिति को और मजबूत किया। उसने अपने समर्थकों को कुछ महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। पीर मुहम्मद खाँ को अपना व्यक्तिगत *वकील*, ख्वाजा अमीनुद्दीन को *बख्शी* और शेख गदई को *सदर* नियुक्त किया।

तारदी बेग को फांसी देने के छः माह तक साम्राज्य के मामलों पर बैरम खाँ का पूर्ण नियंत्रण था। सत्ता पर लगभग अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने के बाद उसने संभावित प्रतिद्वंद्वियों को बादशाह पर प्रभाव कायम करने से रोकने का कार्य किया। मुनीम खाँ तथा ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद को काबुल भेज दिया गया और उनको दरबार के साथ संपर्क स्थापित करने से रोका गया। बैरम खाँ की मजबूत होती स्थिति तथा उसके द्वारा वास्तविक सत्ता के उपभोग करने का कुलीनों ने विरोध किया।

बैरम खाँ की सत्ता के ह्रास का प्रथम साक्ष्य बैरम खाँ के प्रबल विरोध के बावजूद अकबर द्वारा मुनीम खाँ के दामाद मिर्ज़ा अब्दुल्ला मुग़ल की पुत्री के साथ विवाह करना था। अप्रैल 1557 में काबुल से हमीदा बानू बेगम के आगमन ने भी बैरम खाँ की स्थिति को प्रभावित किया। हमीदा बानू बेगम के साथ माहम अनगा भी थीं जिसने तारदी बेग की फांसी की घटना के समय बैरम खाँ का समर्थन किया था। बैरम खाँ को केंद्रीय सरकार के कार्यों का संचालन करने में महत्वपूर्ण कुलीनों के साथ समझौता करने को बाध्य होना पड़ा। उसे प्रमुख कुलीनों के साथ अपनी सत्ता को बांटना पड़ा। एक *वकील* के रूप में बैरम खाँ प्रमुख कुलीनों की सहमति के बगैर राजा के सम्मुख कोई प्रस्ताव नहीं रख सकता था। इस समझौते ने उसकी ताकत को और क्षीण कर दिया तथा 1558 तक उसका व्यक्तिगत *वकील* पीर मुहम्मद भी उसका विरोधी हो गया।

पुनः अपनी ताकत को प्राप्त करने के लिए 1559 में उसने सत्ता हथियाने का प्रयास किया। इस प्रयास में उसने अपने व्यक्तिगत *वकील* पीर मुहम्मद के स्थान पर मुहम्मद खान सीस्तानी को नियुक्त किया। शेख गदई को *सदर* के अतिरिक्त अन्य कार्यभार सौंपा गया। कई छोटे अधिकारियों को तरक्की दी गई। किंतु बैरम खाँ का अधिकतर कुलीनों एवं सम्राट से अलगाव बना रहा। अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण उसने कुलीनों के असंतोष में और वृद्धि की।

आर. पी. त्रिपाठी जैसे इतिहासकारों ने बैरम खाँ की यह कहकर आलोचना की है कि उसने सुन्नियों की उपेक्षा कर शियाओं का पक्ष लिया। इस कारण उसने सुन्नियों को अपना विरोधी बना लिया। किंतु इक्तिदार आलम खान का तर्क है कि यद्यपि बैरम खाँ शिया था फिर भी ऐसा कोई भी ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं होता जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि बैरम खाँ ने धार्मिक आधार पर पक्षपातपूर्ण कार्य किए। वास्तव में, बैरम खाँ का कृपापात्र शेख गदई, जो *सद्र* था, वह एक सुन्नी था शिया नहीं।

बैरम खाँ ने अकबर की चतुरता का आकलन कम करके देखा। उसने बादशाह के विश्वास को जीतने के लिए कोई प्रयास नहीं किया और जब मार्च 1560 में बादशाह ने बैरम खाँ को पद से हटाने की घोषणा की तब बैरम खाँ के सभी वफादारों ने बादशाह का समर्थन किया या फिर वे तटस्थ हो गए।

बैरम खाँ के संरक्षण काल के अध्ययन से स्पष्ट है कि वास्तविक राजनीतिक सत्ता कुलीन वर्ग में निहित थी। कुलानों ने बैरम खाँ के प्रभुत्व को सीमित रूप में ही स्वीकार किया। वे उसकी वास्तविक सार्वभौम सत्ता को स्वीकार करने को तैयार न थे। बैरम खाँ ने कुलीन वर्ग की शक्ति को सीमित करने का प्रयास किया, परन्तु वह असीमित शक्ति प्राप्त करने में असफसल रहा। अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए उसको कभी कुलीन वर्ग के एक गुट पर निर्भर रहना पड़ता तो कभी दूसरे पर। इस प्रकार वह स्वतंत्र

समर्थकों के एक स्थायी गुट को प्राप्त करने में असफल रहा। वास्तव में उसने अपेक्षाकृत छोटे अधिकारियों के ओहदों में वृद्धि और उनको तरक्की प्रदान कर कुलीनों के एक बड़े समूह को अपना विरोधी बना लिया। इस प्रक्रिया में उसने अयोग्य *अमीरों* का भी गठन किया। अपने जीवन के अंत में उसने महसूस किया कि उसके अपने समर्थक भी उसके विरोधी हो गए थे।

बैरम खाँ तथा कुलीनों के बीच संघर्ष वास्तव में संरक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व करने वाली केंद्रीय सत्ता एवं कुलीन वर्ग के बीच का संघर्ष था। इस काल के दौरान सम्राट सत्ता का प्रतीक मात्र था और वह बैरम खाँ के विरोधियों की कठपुतली मात्र बनकर रह गया था। बैरम खाँ ने मुग़ल कुलीनों के दो गुटों, चग़ताई तथा खुरासानी, को संयुक्त करने का प्रयास किया। लेकिन बैरम खाँ के इस मेल-मिलाप के प्रयास को कुलीनों ने अपनी शक्ति एवं स्वतंत्रता के लिए खतरा समझा। बैरम खाँ के वफादारों ने भी बैरम खाँ द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली केंद्रीय प्रभुसत्ता को स्वीकार नहीं किया।

बैरम खाँ का संरक्षण काल उसके लिए एक संकट बना रहा। जहाँ एक ओर वह कुलीनों की स्वतंत्रता में कटौती करना चाहता था, वहीं दूसरी ओर उसे अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए उनके समर्थन की भी आवश्यकता थी। इस कारण उसके संपूर्ण काल में एक विरोधाभास बना रहा। एक नए गुट का गठन कर इसको संतुलित किया जा सकता था, किंतु यह उसके लिए संभव न था। नए गुट का गठन करने के लिए अफगानों को शामिल नहीं किया जा सकता था क्योंकि वे सिंहासन के प्रमुख दावेदार थे। उसके सम्मुख राजपूत सरदारों, *ज़मींदारों* एवं स्थानीय सरदारों का विकल्प था। लेकिन इनको शामिल करने का कार्य एक लंबी प्रक्रिया थी। इस प्रकार बैरम खाँ ने जब कभी भी अपनी स्थिति को मजबूत करने का प्रयास किया, तभी दरबारी कुलीनों ने उसका विरोध किया। इसके फलस्वरूप वह यदा-कदा स्वयं को अलग-थलग पाता और अतंतः उसको सत्ता से हटना पड़ा।

बैरम खाँ के निष्कासन ने मुग़ल राजनीति में अंतर्निहित केंद्रीय सत्ता एवं इसकी अन्तर्निहित विरोधी शक्तियों के बीच के संघर्ष की पुष्टि की। इसकी परिणति केंद्रीकृत सत्ता की विरोधी प्रवृत्ति पर विजय के रूप में हुई। इस प्रवृत्ति के द्वारा उन मुश्किलों को समझने में मदद मिलती है जिनका सामना अकबर ने सार्वभौम सत्ता को संभालने के बाद 1562-1567 के वर्षों में किया। हम देखते हैं कि बैरम खाँ के संपूर्ण संरक्षण काल में राजनीतिक सत्ता तूरानी मूल के अन्य गुटों एवं चग़ताई कुलीनों में निहित थी। एक संरक्षक के रूप में बैरम खाँ तभी तक सत्ता का उपयोग कर सका जब तक इन गुटों ने उसका समर्थन किया। जैसा कि पहले भी बताया गया है कि कुलीन गुटों ने बैरम खाँ की सत्ता को सीमित तौर पर ही स्वीकार किया था ना कि उसे एक वास्तविक शासक के रूप में। उन्होंने उसका तब तक विरोध नहीं किया जब तक अफगानों को न कुचल दिया गया। लेकिन पानीपत के द्वितीय युद्ध में हेमू की पराजय के बाद उन्होंने संरक्षण के केंद्रीकरण की नीतियों का विरोध करना प्रारंभ कर दिया और उसको मुख्य कुलीन गुटों के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया।

6.3 अकबर के अधीन क्षेत्रीय प्रसार

प्रारंभिक समस्याओं का समाधान करने और सिंहासन पर अपने अधिकार को सुदृढ़ करने के बाद अकबर ने मुग़ल साम्राज्य के क्षेत्रीय प्रसार की नीति का प्रारंभ किया। प्रसार की किसी भी नीति के अनुसरण का अभिप्राय देश के विभिन्न भागों में विद्यमान भिन्न-भिन्न राजनीतिक शक्तियों के साथ संघर्ष था। इनमें से कुछ राजनीतिक शक्तियाँ सुसंगठित थीं। राजपूत राज्य इसी श्रेणी के थे। लेकिन वे स्वयं स्वायत्त सरदारों एवं राजाओं के रूप में सारे देश में विद्यमान थे, हालांकि उनका प्रमुख संकेन्द्रण राजपूताना में था। अफगानों का राजनीतिक नियंत्रण मुख्य तौर पर गुजरात, बिहार और बंगाल पर था। दक्खन तथा दक्षिण भारत में खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा तथा अन्य दक्षिणी शक्तियाँ विद्यमान थीं। उत्तर-पश्चिम भारत में कुछ कबाईलियों के छोटे-छोटे राज्य कायम थे। यद्यपि काबुल तथा कंधार पर मुग़ल गुटों का अधिकार था, किंतु वे अकबर का विरोध करते थे।

अकबर ने सुनियोजित ढंग से साम्राज्य के प्रसार का प्रारंभ किया। यहाँ पर यह भी याद रखा जाना चाहिए कि मुग़ल साम्राज्य का महत्वपूर्ण प्रसार अकबर के शासनकाल के दौरान हुआ। उसके उत्तराधिकारियों (जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब) के शासनकाल में साम्राज्य के क्षेत्रीय प्रसार में आंशिक वृद्धि हुई। औरंगज़ेब के शासनकाल में मुख्य प्रसार दक्षिण भारत तथा उत्तर-पूर्वी भारत (असम) को साम्राज्य में शामिल करने के रूप में हुआ।

6.3.1 उत्तर तथा मध्य भारत

प्रथम सैनिक अभियान 1559-1560 में ग्वालियर एवं जौनपुर पर अधिकार करने के लिए किया गया। एक संक्षिप्त लड़ाई के बाद राम शाह ने ग्वालियर के किले का समर्पण कर दिया। खान ज़मां को जौनपुर पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। खान ज़मां ने जौनपुर के अफगान शासकों को पराजित कर उसे मुग़ल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

मध्य भारत के मालवा पर बाज बहादुर का शासन था। उसे अधम खान के नेतृत्व में मुग़ल सेनाओं ने पराजित कर दिया तथा बाज बहादुर बुरहानपुर की ओर भाग गया।

मध्य भारत में गढ़ कटंगा या गोंडवाना का एक अन्य स्वतंत्र राज्य था। इस राज्य पर दलपत शाह की विधवा रानी दुर्गावती का शासन था। दुर्गावती को 1564 में पराजित कर दिया गया। बाद में 1567 में इस राज्य को अकबर ने दलपत शाह के भाई चंद्र शाह को सौंप दिया।

इस काल के दौरान अकबर को मध्य भारत में अनेक विद्रोहों का सामना करना पड़ा। अब्दुल्लाह खाँ उज़बेक इन विद्रोहों का नेता था। उसके साथ अन्य दूसरे उज़बेक भी शामिल हो गए। खान ज़मां तथा आसफ खाँ ने भी विद्रोह किया। अकबर ने मुनीम खाँ की सहायता से इन विद्रोहों का दमन कर दिया और अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया।

बैरम खाँ के पतन के बाद (1560) कुलीनों के साथ अकबर का जो संघर्ष प्रारंभ हुआ था अब उसका भी अंत हो गया। अकबर ने अपनी कूटनीतिक निपुणता, संगठनात्मक योग्यताओं तथा विश्वसनीय मित्रों की सहायता से इस गंभीर समस्या का समाधान किया।

6.3.2 पश्चिम भारत

राजपूताना की विजय

अकबर का मानना था कि स्थाई साम्राज्य के लिए उसको राजपूताना में विद्यमान राजपूत राज्यों को अपने अधीन करना होगा। अतः अकबर ने इन राज्यों के प्रति एक सुनिश्चित नीति का निर्धारण किया। उसने इन राज्यों को न केवल विजित करने का निर्णय लिया अपितु इसके शासकों को अपना सहयोगी बनाने का निश्चय किया। अकबर चित्तौड़ के शासक महाराणा प्रताप को छोड़कर सभी राजपूत शासकों की राजभक्ति प्राप्त करने में सफल रहा। बहुत से राजपूत शासकों को मुग़ल कुलीनों में शामिल कर लिया गया और उन्होंने अकबर की मुग़ल साम्राज्य के प्रसार और सुदृढ़ीकरण में मदद की। यहाँ पर हम अकबर की राजपूत राज्यों के प्रति नीति की विस्तृत विवेचना नहीं करेंगे, इसकी विस्तृत चर्चा हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-112** में की गई है।

गुजरात की विजय

अकबर ने मध्य भारत तथा राजपूताना में अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के बाद 1572 में गुजरात पर अपना ध्यान केंद्रित किया। गुजरात से हुमायूँ के वापस लौट जाने के बाद से कोई संगठित राज्य कायम नहीं हो सका था तथा वहाँ के छोटे-छोटे राज्यों के बीच निरंतर आपसी वैमनस्य बना रहता था। गुजरात जहाँ एक ओर कृषि की दृष्टि से अत्यंत उपजाऊ क्षेत्र था, वहीं दूसरी ओर वहाँ पर अनेकों व्यस्त बंदरगाह थे और उन्नत तथा विकसित व्यापारिक केंद्र थे।

सुल्तान मुज़फ्फर शाह तृतीय (1561-1573; मृ. 1592) नाममात्र का शासक था और सात युद्धरत रियासतें उसके अधीन थीं। राजकुमार इतिमाद खाँ ने इन रियासतों को विजित करने के लिए अकबर को आमंत्रित किया। स्वयं अकबर ने अहमदाबाद की ओर कूच किया। बगैर किसी गंभीर विरोध के नगर पर अधिकार कर लिया गया। सूरत की मजबूत किलेबंदी के कारण कुछ प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, लेकिन उस पर भी अधिकार कर लिया गया। थोड़े ही समय में गुजरात की लगभग सभी रियासतों ने अकबर के अधिपत्य को स्वीकार कर लिया।

अकबर ने गुजरात को एक प्रांत के रूप में संगठित किया और उसको मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका के अधीन कर स्वयं राजधानी वापस लौट आया। लेकिन छः माह के अंदर ही बहुत से विद्रोही गुट एकीकृत हो

गए और उन्होंने मुग़ल शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह के नेता इख्तियारूल मुल्क एवं मुहम्मद हुसैन मिर्ज़ा थे। मुगल गवर्नर को अनेक क्षेत्रों का परित्याग करना पड़ा।

गुजरात में अकबर ने विद्रोह का समाचार पाकर पुनः अहमदाबाद की ओर प्रस्थान किया। अकबर के इस अभियान को श्रेष्ठतम और सबसे अधिक द्रुत गति का माना गया है। वह प्रतिदिन 50 मील का मार्ग तय करता हुआ सेना की एक छोटी टुकड़ी के साथ 10 दिन के अंदर गुजरात पहुँच गया और विद्रोह को कुचल दिया।

गुजरात में लगभग एक दशक तक शांति बनी रही। इसी बीच मुज़फ्फर तृतीय कैद से भाग गया और उसने जूनागढ़ में शरण ली। 1583 के बाद उसने कुछ विद्रोहों को संगठित करने का प्रयास किया।

6.3.3 पूर्वी भारत

शेरशाह के हाथों हुमायूँ की पराजय के बाद से ही बिहार तथा बंगाल पर अफगानों ने शासन किया। 1564 में बिहार के गवर्नर सुलेमान कर्रानी ने बंगाल को भी अपने अधीन कर लिया था। सुलेमान ने अकबर की बढ़ती शक्ति का अहसास करते हुए मुग़लों की अधीनता को स्वीकार कर लिया। वह अकबर को नियमित भेंट भेजा करता था। 1572 में उसकी मृत्यु के पश्चात् कुछ संघर्ष के बाद उसके छोटे पुत्र दाऊद ने उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया। दाऊद ने मुग़लों की अधीनता को मानने से इंकार कर दिया और जौनपुर के मुग़ल गवर्नर के साथ संघर्ष करने लगा।

1574 में अकबर ने मुनीम खान खान-ए खानान के साथ बिहार की ओर प्रस्थान किया। थोड़े समय में ही हाजीपुर तथा पटना पर अधिकार कर लिया गया तथा दाऊद गढ़ी की ओर भाग गया। कुछ समय तक वहाँ पर ठहरने के बाद अकबर वापस लौट आया। मुनीम खाँ तथा टोडरमल ने दाऊद का पीछा किया और उसने कुछ समय पश्चात् मुग़लों के सम्मुख समर्पण कर दिया। कुछ समय बाद उसने पुनः विद्रोह किया। खान-ए जहाँ के अधीन मुग़ल सेनाओं ने उसका वध कर दिया और गौड़ (बंगाल) प्रदेश को भी मुग़लों ने अपने अधीन कर लिया। इससे 1576 में लगभग दो सौ साल (कुछ अपवादों को छोड़कर) से चले आ रहे बंगाल के स्वतंत्र शासन का अंत हो गया। हालांकि, ओडिशा के कुछ भाग अब भी अफगान सरदारों के अधीन थे। 1592 के आसपास मानसिंह ने संपूर्ण ओडिशा को भी मुग़ल साम्राज्य के अधीन कर लिया।

6.3.4 1581 के विद्रोह

वी. ए. स्मिथ के अनुसार 'यदि अकबर के अपनी शक्ति के सुदृढ़ करने वाले प्रारंभिक वर्षों पर ध्यान न दिया जाए तब अकबर के शासनकाल में 1581 का वर्ष सबसे बड़े संकट का वर्ष था'।

कुलीन वर्ग के 1567 तक चलने वाले संघर्ष के बाद पुनः बंगाल, बिहार, गुजरात तथा उत्तर-पश्चिम में गंभीर संघर्ष उभरकर सामने आए। इन विद्रोहों की जड़ों में उन अफगानों का असंतोष था जिनको मुग़लों द्वारा सभी स्थानों से हटाया जा चुका था। इसके अतिरिक्त अकबर के *जागीर* प्रशासन की कड़ी नीति भी इसके लिए उत्तरदायी थी। इस नई नीति के द्वारा *जागीरदारों* को आदेश दिया गया कि वे अपनी-अपनी *जागीरों* का लेखा-जोखा जमा करें तथा उनके सैनिक खर्चों में कटौती की गई थी। बंगाल के गवर्नर ने इन आदेशों को कठोरता के साथ लागू किया। इस नीति ने वहाँ विद्रोह को जन्म दिया। शीघ्र ही विद्रोह बिहार में फैल गया। मासूम खाँ काबुली, रोशन बेग़, मिर्ज़ा शर्फुद्दीन तथा अरब बहादुर इस विद्रोह के प्रमुख नेता थे। मुज़फ्फर खान तथा राय पुरषोत्तम एवं अन्य अधिकारियों ने इन विद्रोहों का दमन करने का प्रयास किया किंतु वे असफल रहे। अकबर ने तुरंत राजा टोडरमल तथा शेख फरीद बख्शी के नेतृत्व में एक बड़ी सेना को भेजा। कुछ समय बाद टोडरमल की सहायता के लिए अज़ीज़ कोका तथा शाहबाज़ खाँ को भेजा गया। इसी बीच काबुल में विद्रोहियों ने अकबर के भाई हाकिम मिर्ज़ा को अपना राजा घोषित कर दिया। मुग़ल सेनाओं ने बिहार, बंगाल तथा आसपास के क्षेत्रों में विद्रोह को कुचल दिया। कुछ विद्रोही नेताओं ने बचकर बंगाल के जंगल क्षेत्र में शरण ली। ये नेता अपने अधिकांश समर्थकों को खो चुके थे, फिर भी कुछ वर्षों तक बगैर किसी विशेष प्रभाव के ये मुग़ल अधिकारियों को अपने छोटे-मोटे हमलों द्वारा परेशान करते रहे।

मिर्ज़ा हाकिम ने अकबर का दबाव बढ़ाने के लिए लाहौर पर आक्रमण किया। अकबर ने भी लाहौर की ओर प्रस्थान किया। हाकिम मिर्ज़ा ने जैसे ही अकबर के प्रस्थान का समाचार सुना वैसे ही वह पीछे हट गया। हाकिम मिर्ज़ा का अनुमान था कि अधिकतर मुग़ल अधिकारी उसके साथ शामिल हो जायेंगे किंतु उसका अनुमान गलत साबित हुआ। अकबर ने उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा संगठित करने के बाद एक सेना को काबुल भेजा। अकबर ने भी काबुल की ओर प्रस्थान किया। जब तक अकबर काबुल पहुंचा, हाकिम मिर्ज़ा ने काबुल का परित्याग कर दिया तथा अकबर ने इस पर अपना अधिकार कर लिया, अकबर ने काबुल को अपनी बहन बख्तुन्निसा बेगम के अधीन कर दिया तथा आगरा वापस लौट आया (1581)। कुछ समय बाद हाकिम मिर्ज़ा भी वापस लौट आया और उसने अपनी बहन के नाम से शासन चलाना जारी रखा। 4 वर्ष बाद मिर्ज़ा हाकिम की मृत्यु हो गई तथा अकबर ने राजा मानसिंह को काबुल का गवर्नर नियुक्त किया।

जिस समय बिहार, बंगाल एवं उत्तर-पश्चिमी प्रांतों में विद्रोह हुए लगभग उसी समय गुजरात में भी विद्रोह हुआ। यहाँ पर मुज़फ्फर शाह कैद से भाग गया और उसने छोटी सी विद्रोही सेना की टुकड़ी का संगठन किया। उसने गुजरात के मुग़ल क्षेत्रों पर आक्रमण करने शुरू कर दिए। इतिमाद खाँ को गुजरात का गवर्नर नियुक्त कर भेजा गया। विद्रोहियों के विरुद्ध इस अभियान में निज़ामुद्दीन अहमद ने बख्शी की हैसियत से उसकी सहायता की। 1584 में मुज़फ्फर शाह को अहमदाबाद तथा नांदेड़ में पराजित कर दिया गया। वह बचकर कच्छ क्षेत्र की ओर भाग गया। निज़ामुद्दीन अहमद ने उसका यहाँ पर भी पीछा किया। संपूर्ण कच्छ क्षेत्र में अनेकों किलों का निर्माण किया गया तथा मुग़ल अधिकारियों को वहाँ पर नियुक्त कर दिया गया। मुज़फ्फर 1591-1592 तक कोई न कोई समस्या खड़ी करता रहा जब उसे अंततः गिरफ्तार कर लिया गया।

6.3.5 उत्तर-पश्चिम में विजयें

हाकिम मिर्ज़ा की मृत्यु के बाद काबुल को मुग़ल साम्राज्य में शामिल कर राजा मानसिंह को उसे *जागीर* के रूप में सौंप दिया गया। ठीक उसी समय अकबर ने उत्तर-पश्चिम सीमांत क्षेत्र में हो रहे विद्रोहों को दबाने एवं नए क्षेत्रों को विजित करने का निर्णय किया।

रोशनाइयों का दमन

इस क्षेत्र में अकबर का सर्वप्रथम ध्यान रोशनाई आंदोलन की ओर आकर्षित हुआ। रोशनाई एक संप्रदाय था जिसका गठन सीमा क्षेत्र में पीर रोशनाई नाम के एक सिपाही ने किया था। उसको व्यापक समर्थन प्राप्त था। उसकी मृत्यु के बाद उस संप्रदाय का मुखिया उसका पुत्र जलाला बन गया। रोशनाइयों ने मुग़लों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और काबुल तथा हिंदुस्तान के बीच के मार्ग को काट दिया। अकबर ने रोशनाइयों के विद्रोह का दमन करने तथा इस क्षेत्र में मुग़ल सत्ता को स्थापित करने के लिए ज़ैन खाँ को एक शक्तिशाली सेना का सेनापति नियुक्त किया। ज़ैन खाँ की सहायता हेतु सैय्यद खाँ घक्खर तथा राजा बीरबल को अलग सेना के साथ भेजा गया। एक अभियान के दौरान राजा बीरबल लगभग 8 हज़ार सैनिकों के साथ मारा गया। उसी के साथ ज़ैन खाँ को भी पराजित कर दिया गया। किंतु वह बचकर किसी प्रकार अकबर के पास अटक के किले में पहुंचा। अकबर को राजा बीरबल की मृत्यु से बहुत गहरा आघात लगा क्योंकि वह उसके अत्यंत प्रिय साथियों में से एक था। अकबर ने इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए एक शक्तिशाली सेना का सेनानायक राजा टोडरमल को नियुक्त किया। राजा मानसिंह से भी कार्यवाही करने को कहा गया। इन दोनों के संयुक्त अभियान के कारण मुगलों को सफलता मिली और रोशनाइयों को पराजित कर दिया गया।

कश्मीर की विजय

अकबर की दृष्टि बहुत दिनों से कश्मीर को विजित करने पर लगी थी। वह जिस समय अटक में पड़ाव डाले हुए था तभी उसने राजा भगवान दास तथा शाह कुली महराम के नेतृत्व में कश्मीर की विजय के लिए सेना भेजी। कश्मीर के राजा यूसुफ खान को पराजित कर दिया गया और उसने मुग़लों की अधीनता को स्वीकार कर लिया। किंतु अकबर इस संधि से बहुत प्रसन्न न था क्योंकि वह कश्मीर को अपने साम्राज्य में शामिल करना चाहता था। यूसुफ खाँ के पुत्र याकूब ने कश्मीर के *अमीरों* के

साथ मिलकर मुग़लों का विरोध करने का निर्णय किया और युद्ध प्रारंभ कर दिया। किंतु कश्मीर की सेना में कुछ असंतोष उत्पन्न हो गया। अंततः मुग़ल सेनाओं ने विजय प्राप्त की और कश्मीर को 1586 में मुग़ल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

थट्टा (सिंध) की विजय

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के सिंध प्रांत में थट्टा का क्षेत्र अभी तक स्वतंत्र था। अकबर ने खान-ए खानान को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया और 1590 में उसको सिंध विजय तथा बलूचियों का दमन करने का आदेश दिया। थट्टा को विजित कर लिया गया तथा इसे मुल्तान ***सूबे*** की एक *सरकार* के तौर पर मुल्तान के गवर्नर के अधीन कर दिया गया।

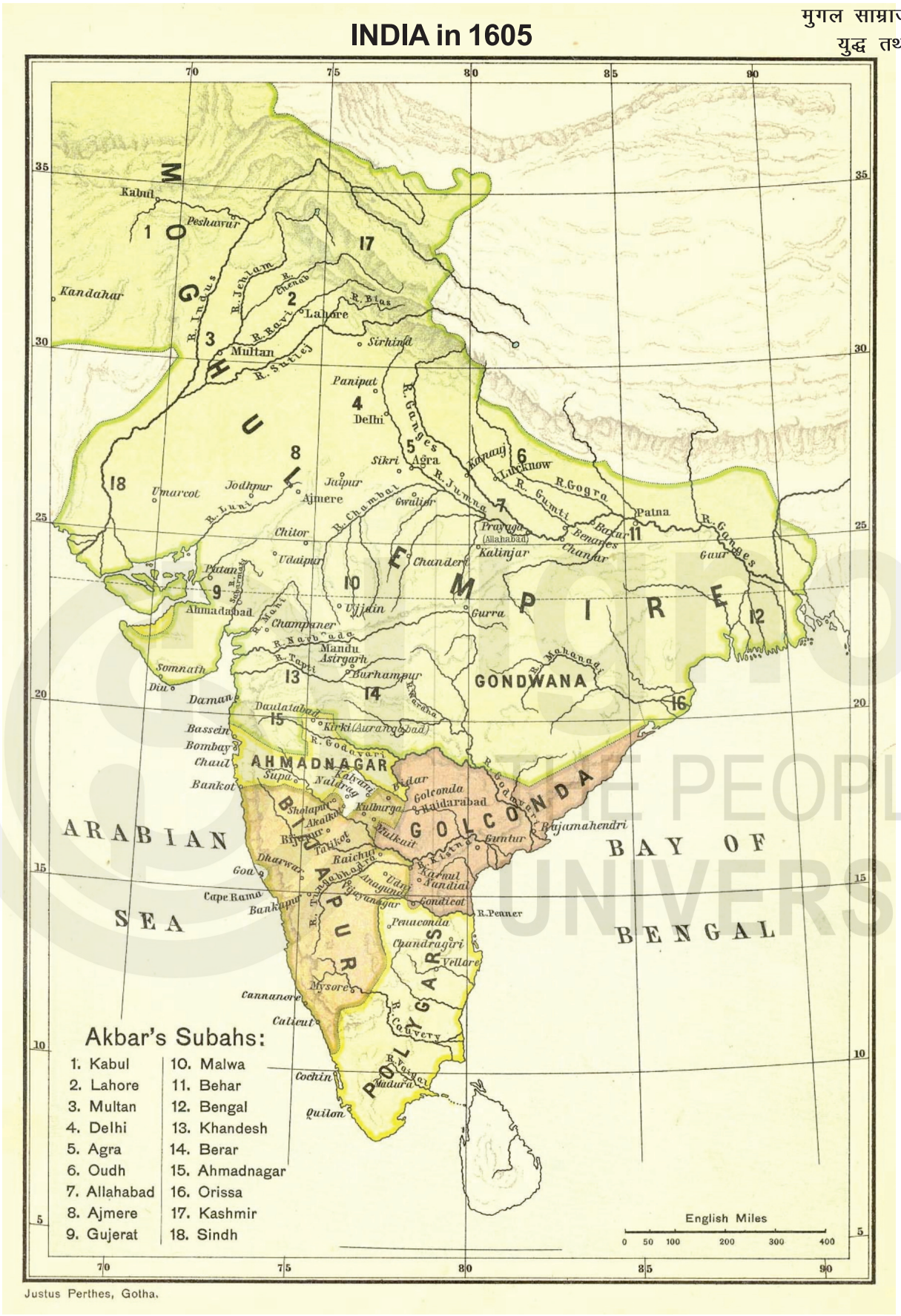
आसपास के क्षेत्रों में मुग़ल सेनाओं ने बलूचियों का दमन जारी रखा। 1595 में अंतिम तौर पर उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र पर मुग़लों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई।

6.3.6 दक्खन तथा दक्षिण भारत

गुजरात तथा मालवा पर विजय हासिल करने के बाद अकबर ने दक्खन के राज्यों अहमदनगर, बीजापुर तथा गोलकुंडा में रुचि लेना प्रारंभ कर दिया। प्रारंभिक संपर्क दूत भेजने तथा यदा-कदा भेंट तक ही सीमित था। 1590 के बाद अकबर ने इन राज्यों को मुग़ल नियंत्रण के अधीन करने के लिए योजना बनाना शुरू कर दिया। इस समय के आसपास दक्खन राज्यों में आंतरिक एवं आपसी कलह भी चल रहा था।

अकबर ने 1591 में दक्षिण के राज्यों को मुग़ल साम्राज्य की सर्वोच्चता स्वीकार करने के लिए दूतों को भेजा। फैज़ी को असीर तथा बुरहानपुर (खानदेश), ख्वाजा अमीनुद्दीन को अहमदनगर, मीर मुहम्मद अमीन मशदी को बीजापुर तथा मिर्ज़ा मसूद को गोलकुंडा भेजा गया। 1593 तक ये सभी मिशन बगैर सफलता के वापस लौट आए। यह कहा गया कि केवल खानदेश के शासक अली खाँ ने मुग़लों के प्रति मित्रता में रुचि दिखाई। अकबर ने सैन्य शक्ति का अनुसरण करने का निर्णय किया। यहाँ पर हम मुग़लों की दक्खन नीति की कोई विस्तृत चर्चा ना करके, दक्खन में अकबर के अधीन क्षेत्रीय विस्तार का विवरण करेंगे (दक्खन नीति की विस्तृत चर्चा हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-112** में की जाएगी)।

प्रथम सैनिक अभियान शहज़ादा मुराद तथा अब्दुर रहीम खान-ए खानान के नेतृत्व में अहमदनगर भेजा गया। 1595 में मुग़ल सेनाओं ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया। इसकी शासिका चाँद बीबी ने एक विशाल सेना का नेतृत्व करते हुए मुग़लों का सामना किया। उसने बीजापुर के शासक इब्राहिम अली शाह तथा गोलकुंडा के शासक कुतब शाह से सहायता का आग्रह किया किंतु सफलता न मिली। चाँद बीबी ने मुग़ल सेनाओं का कड़ा प्रतिरोध किया। दोनों ओर से भारी नुकसान के बाद एक संधि का मसौदा तैयार किया गया। इस संधि के अनुसार चाँद बीबी ने बरार का समर्पण मुग़लों को कर दिया। कुछ समय बाद चाँद बीबी ने बरार को वापस लेने के लिए उस पर आक्रमण किया। इस समय निज़ामशाही, कुतब शाही तथा आदिल शाही सेनाओं ने संयुक्त तौर पर मुग़ल सेना का मुकाबला किया। मुग़लों को भारी नुकसान उठाना पड़ा किंतु किसी प्रकार से मैदान में डटे रहे। इसी बीच मुराद एवं खान-ए खानान के बीच मतभेद हो जाने के कारण मुग़ल सेना की स्थिति कमजोर पड़ गई। इसलिए अकबर ने अबुल फज़ल को दक्खन के अभियान पर भेजा और खान-ए खानान को वापस बुला लिया। 1598 में शहज़ादा मुराद की मृत्यु के पश्चात् शहज़ादा दानियाल तथा खान-ए खानान को दक्खन भेजा गया। अकबर भी सहायता के लिए उनसे जा मिला। प्रथम, अहमदनगर पर अधिकार कर लिया गया। इसी बीच चाँद बीबी की मृत्यु हो गई। 1600 में असीरगढ़ तथा आसपास के क्षेत्रों को मुग़ल सेनाओं ने विजित कर लिया। बीजापुर के शासक आदिल शाह ने मुग़लों की सर्वोच्चता को स्वीकार कर लिया तथा शहजादा दानियाल के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने की पेशकश की। दक्खन में अब मुग़ल साम्राज्य में असीरगढ़, बुरहानपुर, अहमदनगर तथा बरार के क्षेत्र शामिल थे।



मानचित्र 6.1: अकबरकालीन भारत

स्रोतः चार्ल्स जोपन, (1907) *हिस्टॉरिकल एटलस ऑफ इंडिया,* (लंदनः लॉन्गमैन्स, ग्रीन एंड को.).

स्रोतः http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00maplinks/mughal/joppenset/joppenset.html

https://commons.wikimedia.org/wiki/File:India_in_1605_from_%22Historical_Atlas_of_India,%22_by_Charles_Joppen.jpg

बोध प्रश्न-1

1) बैरम खाँ ने अपनी सत्ता के लिए प्रारंभिक चुनौतियों का सामना कैसे किया?

.....

.....

.....

2) पानीपत के द्वितीय युद्ध के बाद बैरम खाँ द्वारा सत्ता की पुनर्स्थापना की व्याख्या कीजिए और 1557 के बाद बैरम खाँ की शक्ति के पतन की चर्चा की कीजिए।

.....

.....

.....

3) गुजरात को कैसे मुग़ल शासन के अधीन किया गया?

.....

.....

.....

4) 1581 के विद्रोह से कौन-कौन से क्षेत्र प्रभावित थे?

.....

.....

.....

6.4 अकबर के उत्तराधिकारियों के अधीन क्षेत्रीय विस्तार

अकबर के क्षेत्रीय विस्तार ने मुग़ल साम्राज्य को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया। उसके उत्तराधिकारियों अर्थात जहाँगीर, शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब के शासनकाल में क्षेत्रीय प्रसार में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई। हम देखते हैं कि औरंगज़ेब के बाद साम्राज्य का बिखराव प्रारंभ हो गया था। इस भाग में हम अकबर के उत्तराधिकारियों के शासन के दौरान क्षेत्रीय प्रसार का उल्लेख करेंगे।

17वीं शताब्दी में मुख्य रूप से गतिविधियाँ उत्तर-पश्चिम सीमा, दक्खन और दक्षिण भारत, उत्तर-पूर्व और कुछ सुदूर क्षेत्रों में हुईं।

उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में रोशनाइयों पर 1625-1626 में निर्णायक विजय प्राप्त कर ली गई। अब कंधार ईरानियों तथा मुग़लों के बीच संघर्ष क्षेत्र बन गया। अकबर की मृत्यु के पश्चात् सफ़ावी वंश के शासक शाह अब्बास प्रथम के अधीन ईरानियों ने कंधार पर अधिकार करने का प्रयास किया। किंतु वे असफल रहे। तत्पश्चात् 1620 में शाह अब्बास प्रथम ने जहाँगीर से कंधार देने का अनुरोध किया। किंतु जहाँगीर ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। 1622 में एक अन्य आक्रमण द्वारा ईरानियों ने कंधार पर अधिकार कर लिया। कंधार पर अधिकार करने के लिए औरंगज़ेब के शासनकाल तक संघर्ष चलता रहा किंतु मुग़लों को बहुत कम सफलता प्राप्त हुई (देखें **भाग 6.6, 6.7** और **6.8**)।

राजपूताना में मेवाड़ एक ऐसा क्षेत्र था जो अकबर के शासनकाल में मुग़ल साम्राज्य का अंग न बन सका था। इस पर अधिकार करने के लिए जहाँगीर ने एक सुनिश्चित नीति का अनुसरण किया। अनेकों संघर्षों के बाद राणा अमर सिंह ने अंततः मुग़लों की अधीनता को स्वीकार कर लिया। चित्तौड़ के किले सहित मेवाड़ से जितने भी क्षेत्र मुगलों द्वारा अपने अधिकार में लिए गए थे, उसे अमर सिंह को वापस लौटा दिया गया। और उसके पुत्र करण सिंह को एक बड़ी *जागीर* प्रदान की गई। अकबर के उत्तराधिकारियों के शासन के दौरान राजपूतों के मुग़लों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध जारी रहे और मुग़ल शासकों द्वारा उन्हें उच्च *मनसब* प्रदान किए गए।

अकबर के शासन के अंतिम वर्षों तथा जहाँगीर के प्रारंभिक वर्षों में मलिक अम्बर के नेतृत्व में अहमदनगर ने मुग़ल सत्ता को चुनौती देना प्रारंभ कर दी थी। मलिक अम्बर इस संघर्ष में बीजापुर

का समर्थन प्राप्त करने में भी सफल हो गया। जहाँगीर ने अनेकों सैनिक अभियानों को वहाँ भेजा किंतु वे कोई भी सफलता प्राप्त करने में असमर्थ रहे। शाहजहाँ के शासनकाल में पुनः मुग़लों का संघर्ष दक्खन के राज्यों अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के साथ प्रारंभ हो गया। अहमदनगर ऐसा प्रथम राज्य था जिसको पराजित कर उसके अधिकांश क्षेत्र को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया था। 1636 तक बीजापुर तथा गोलकुंडा को भी पराजित कर दिया गया किंतु इन राज्यों को मुग़ल साम्राज्य में शामिल नहीं किया गया। एक संधि के बाद पराजित राज्यों ने वार्षिक नज़राना देना एवं मुग़ल प्रभुत्व को स्वीकार किया। लगभग 10 वर्षों तक शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगज़ेब को गवर्नर बनाकर दक्खन में रखा। इस दौरान इस क्षेत्र में मराठों का एक शक्तिशाली राजनीतिक शक्ति के रूप में उत्थान हो रहा था। औरंगज़ेब के शासनकाल में दक्खन राज्यों तथा मराठों के साथ संघर्ष और गहन हो गया। वास्तव में औरंगज़ेब ने अपने शासनकाल के अंतिम 20 वर्ष दक्खन में युद्ध करने में व्यतीत किए। 1687 तक बीजापुर (1686) तथा गोलकुंडा (1687) राज्यों को मुग़ल साम्राज्य के अधीन कर लिया गया।

असम विजय

औरंगज़ेब के काल में उत्तर-पूर्व के क्षेत्र असम की विजय मुग़लों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। 1661 में बंगाल के गवर्नर मीर जुमला ने अहोम राज्य पर आक्रमण किया। मीर जुमला के पास 12,000 घुड़सवार, 30,000 पैदल सैनिक और बड़ी संख्या में नावों पर तोपखाना था। अहोम (असम के शासक) प्रतिरोध बहुत कमजोर था। मीर जुमला अहोम राज्य की राजधानी कामरूप पर मुग़ल अधिकार स्थापित करने में सफल रहा। राजा राजधानी छोड़कर भाग गया। 1663 में राजा स्वर्गदेव ने समर्पण कर दिया और शांति स्थापित हुई। असम को मुग़ल साम्राज्य में मिलाया गया और मुग़ल अधिकारियों की नियुक्ति की गई। 1663 में मीर जुमला की मृत्यु हो गई। उत्तर-पूर्व में मुग़लों को दूसरी बड़ी सफलता बंगाल के नए गवर्नर शाइस्ता खाँ के काल में मिली। 1664 में उसने सफलतापूर्वक चटगाँव पर अधिकार कर लिया।

परंतु मुग़ल बहुत लंबे समय तक अहोम राज्य पर अपना नियंत्रण बनाए रखने में सफल न हो सके। वहाँ नियुक्त मुग़ल फौजदारों को कई प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। 1680 में अहोम कामरूप पर पुनः नियंत्रण स्थापित कर सके और वहाँ प्रत्यक्ष मुग़ल नियंत्रण समाप्त हो गया।

6.5 स्वायत्त सरदारों के प्रति नीतियाँ

मुग़ल साम्राज्य को सुदृढ़ करने के प्रयासों में अकबर ने अपना ध्यान स्वायत्त सरदारों (chieftains) की ओर भी आकृष्ट किया। स्वायत्त सरदार शब्द का प्रयोग उन शासक वंशों के लिए किया गया जो संपूर्ण देश में फैले हुए छोटे-छोटे क्षेत्रों में किसी ना किसी रूप में शासन करते थे (इतिहासकारों के बीच इस शब्द के प्रयोग पर आम सहमति है)। इन शासकों को मुग़लों के साथ संबंधों में एक विशिष्ट प्रकार का दर्जा प्राप्त था। जहाँ एक ओर वे अपने शासित क्षेत्र पर अपना प्रशासन चलाने के लिए स्वतंत्र थे, वहीं पर वे मुग़ल साम्राज्य के परिप्रेक्ष्य में एक सहायक की स्थिति रखते थे।

अकबर की सफलता इस तथ्य में निहित थी कि वह अपने साम्राज्य के स्थायित्व के लिए इन सरदारों का समर्थन प्राप्त करने में समक्ष रहा। अकबर के उत्तराधिकारियों ने भी लगभग इसी नीति का अनुसरण किया।

स्वायत्त सरदारों की सत्ता की प्रकृति

समकालीन विवरणों में इन सरदारों का उल्लेख *राय, राणा, रावत, रावल, राजा, मर्ज़बान, कालंतरान* (अंतिम दो नाम फारसी के हैं), आदि के रूप में हुआ है। कभी-कभी *ज़मींदार* शब्द का प्रयोग साधारण भू-स्वामी तथा स्वायत्त सरदारों दोनों के लिए किया गया है। लेकिन दोनों के मध्य एक निश्चित अंतर था। मुग़ल प्रभुत्व के अधीन *ज़मीदार* स्वतंत्र नहीं थे, जबकि स्वायत्त सरदारों को अपने शासित क्षेत्रों में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी तथा ये मुग़ल शासकों के साथ एक भिन्न प्रकार का संबंध रखते थे।

स्वायत्त सरदारों पर प्रथम प्रमुख अध्ययन एहसन रज़ा खान द्वारा किया गया। उनके अनुसार ये साम्राज्य के केवल परिधीय क्षेत्र में ही सीमित नहीं थे बल्कि ये केंद्रीय क्षेत्र दिल्ली, आगरा, अवध और इलाहाबाद *सूबों* में भी पाए जाते थे। इन स्वायत्त सरदारों में सबसे अधिक संख्या राजपूतों की थी, लेकिन ये मुसलमान सहित सभी जातीय समूहों से संबंधित थे।

स्वायत्त सरदारों का एक शक्तिशाली समूह था जिनके पास विशाल पैदल सेना, घुड़सवार सेना और विशाल मात्रा में राजस्व कमाने के लिए सैंकड़ों एकड़ कृषि भूमि थी।

स्वायत्त सरदारों के साथ मुग़लों का संघर्ष

भारत की केंद्रीय सत्ता, लोदियों, की पराजय के बाद बाबर को अफगानों तथा स्वायत्त सरदारों के संयुक्त विद्रोह का सामना करना पड़ा। हुमायूँ को भी उनकी शत्रुता का सामना करना पड़ा।

स्वायत्त सरदारों के साथ अकबर का प्रारंभिक संपर्क संघर्षों तथा युद्धों के माध्यम से हुआ। कई मामलों में यह सरदार मुग़ल एवं अफगान विद्रोहियों के साथ मिल गए। मुग़ल सत्ता के सुदृढ़ीकरण एवं विजयों की प्रक्रिया में अकबर ने स्वायत्त सरदारों का समर्थन प्राप्त किया और कई ने मुग़लों की अधीनता को भी स्वीकार किया। अकबर की इन स्वायत्त सरदारों के प्रति कोई घोषित औपचारिक नीति न थी। समकालीन स्रोतों में उपलब्ध संदर्भों के आधार पर हमें मुग़लों तथा स्वायत्त सरदारों के बीच के संबंधों की जानकारी प्राप्त होती है। उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है:

1) विजय के पश्चात् या उनके द्वारा अधीनता स्वीकार करने के बाद उनको अपने क्षेत्रों का प्रशासन करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया। उनके पास राजस्व एकत्रित करने, व्यावसायिक कर तथा पारगमन कर, पथकर (transit tax), आदि करों को लगाने के अधिकार थे। राजस्व एकत्रित करने में स्वायत्त सरदार मुग़ल अधिनियमों की अपेक्षा स्थानीय परंपराओं का अनुसरण करते थे।

2) इन स्वायत्त सरदारों की मुग़ल सेना में भी नियुक्ति की गई। उनको *जागीरें* एवं *मनसब* प्रदान किए जाते थे। ए. आर. खान के अनुसार, अकबर के शासन के दौरान लगभग 61 राजाओं और स्वायत्त सरदारों को *मनसब* प्रदान किए गए। इसी प्रकार की परंपरा का निर्वाह अन्य मुग़ल सम्राटों द्वारा भी किया गया।

3) जिन मामलों में स्वायत्त सरदारों को *मनसबदार* नहीं बनाया गया वे भी अक्सर शत्रुओं के विरुद्ध चलाए गए सैनिक अभियानों एवं विद्रोहों का दमन करने में मुग़ल सेनाओं की मदद करते थे। संपूर्ण मुग़ल शासन के दौरान इन स्वायत्त सरदारों ने न केवल विशाल क्षेत्रों को विजित करने में मदद की अपितु उन्होंने कई बार अपने कुल-वंश के लोगों के विरुद्ध भी मुग़लों की सहायता की।

4) सैन्य मदद उपलब्ध कराने के अतिरिक्त अक्सर इन स्वायत्त सरदारों को प्रशासन में *सूबेदार* (गवर्नर), *दीवान, बख्शी,* आदि जैसे महत्वपूर्ण पदों पर भी नियुक्त किया जाता था।

5) अन्य *जागीरों* के अतिरिक्त उनको अक्सर *जागीर* के तौर पर उनके अपने क्षेत्रों को भी दिया जाता था जिन्हें *वतन जागीर* कहा जाता था। ये *जागीरें* पैतृक एवं अपरिवर्तनीय थीं।

6) उनके संबंधों की एक मुख्य विशेषता यह भी थी कि यदि परिवार के अंदर शासन के उत्तराधिकार को लेकर किसी प्रकार का विवाद उठ खड़ा होता तब स्वायत्त सरदार के अधिकारों को मान्यता प्रदान करने का अधिकार मुग़ल सम्राटों को था। जिन स्वायत्त सरदारों ने मुग़लों की अधीनस्थता को स्वीकार किया उनको मुग़ल सम्राटों ने सैनिक सुरक्षा प्रदान की।

7) स्वायत्त सरदारों से यह आशा की जाती थी कि वे मुग़ल सम्राट को लगातार नज़राना देते रहें, इसको *पेशकश* कहा गया। इस *पेशकश* के वास्तविक चरित्र को पहचान पाना कठिन है। उस समय इसको नकदी तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं जैसे हीरे, सोना एवं हाथियों के रूप में अदा करना होता था। *पेशकश* की अदायगी राजस्व आय के स्रोत के अतिरिक्त मुगलों की अधीनता का प्रतीक भी थी।

8) मुग़ल शाही परिवार तथा स्वायत्त सरदारों के बीच वैवाहिक संबंधों को भी कायम किया गया।

स्वायत्त सरदारों के विद्रोह

स्वायत्त सरदारों द्वारा किए गए बहुत से विद्रोहों के विवरण हमें मिलते हैं। इस प्रकार के विद्रोहों के कारणों के विषय में समकालीन ग्रंथों ने अक्सर राजस्व या नज़राने की अदायगी न करना बताया है। विद्रोहों की स्थिति में अधिकांशतः स्वायत्त सरदारों को उनके क्षेत्र से बेदखल नहीं किया गया, अपितु

फिर उन्हें या परिवार के किसी अन्य सदस्य को उस क्षेत्र को सौंप दिया जाता था। अगर कुछ अन्य मामलों में किसी स्वायत्त सरदार को उसके क्षेत्र से बेदखल कर दिया जाता था तब यह केवल धमकी/डांट-फटकार के लिए होता था और कुछ समय बाद उसी को या उसके किसी परिवार के सदस्य को सत्ता में पुनः स्थापित कर दिया जाता।

स्वायत्त सरदारों के प्रति जिस नीति का प्रारंभ अकबर ने किया था वह आगामी मुग़ल सम्राटों के शासनकाल में भी जारी रही। इन स्वायत्त सरदारों को मुग़ल कुलीन या *मनसबदार* के रूप में शामिल करने की नीति साम्राज्य के लिए अति लाभप्रद साबित हुई। मुग़ल सम्राटों ने स्वायत्त सरदारों का समर्थन तथा नवीन विजयों के लिए उनकी सेवाएँ प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। मुग़ल कुलीनों के रूप में इस विशाल साम्राज्य के प्रशासन का संचालन करने में इन स्वायत्त सरदारों ने महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की। इन स्वायत्त सरदारों के साथ मित्रतापूर्ण संबंधों ने साम्राज्य के लिए शांति को सुनिश्चित किया। इस नीति से स्वायत्त सरदारों को भी लाभ हुआ। अब वे अपने क्षेत्र अपने पास बनाए रख सकते थे और अपनी इच्छानुसार अपने क्षेत्र का प्रशासन चला सकते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य *जागीरें* तथा *मनसब* भी प्राप्त किए। कई बार उनको प्रदान की गई *जागीर* उनके स्वयं के क्षेत्र की अपेक्षा बड़ी होती थी। साथ ही साथ उनको अपने शत्रुओं तथा विद्रोहियों के विरुद्ध मुग़ल साम्राज्य की सुरक्षा प्राप्त हुई।

बोध प्रश्न-2

1) औरंगज़ेब की क्षेत्रीय प्रसार की मुख्य उपलब्धियों की सूची बनाइए।

.....

.....

.....

2) किस प्रकार मुग़लों द्वारा स्वायत्त सरदारों के प्रति अपनाई गईं नीतियाँ आपसी हित की थीं?

.....

.....

.....

6.6 मुगल तथा उत्तर-पश्चिमी सीमाः वैश्विक एवं क्षेत्रीय अवधारणा

16वीं शताब्दी के प्रथम दशक में जैसे ही तैमूर एवं तुर्की राज्यों का पतन हुआ वैसे ही पश्चिम एशिया एवं मध्य एशिया में दो नये राज्य अस्तित्व में आये (**इकाई 4**)। इन दोनों राज्यों (उज़बेग तथा सफ़ावी) की सीमाएँ परस्पर मिलती थीं। केवल अमु दरिया दोनों को अलग करता था। इसी कारण दोनों के बीच कभी समाप्त न होने वाला संघर्ष एवं युद्ध स्वाभाविक था। यही कारण था कि उन दोनों की साम्राज्य प्रसार की योजनाओं को एक-दूसरे के क्षेत्र पर अधिकार करके ही पूरा किया जा सकता था। यद्यपि नये राज्य एक बड़े साम्राज्य के प्रांत रह चुके थे और इसी कारण से उनमें कुछ समान विशेषताएँ भी थीं। इन नये राज्यों के पतन के फलस्वरूप 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में दो अलग एवं विशिष्ट पहचान वाले राज्यों का उद्भव हुआ। अब इनका जातीय, भाषाई तथा साम्प्रदायिक आधार तथा काफी हद तक सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएँ भी भिन्न थीं। 'सफ़ावी' या 'धर्म योद्धा', उनको कहा गया जिन्होंने अपने सह-धर्मियों को एक राजनैतिक शक्ति के रूप में संगठित किया और उनके उद्भव से ईरानी राज्य की स्थापना, ऑटोमन साम्राज्य तथा उज़बेगों के एक प्रतिद्वन्द्वी के रूप में हुई। व्यापक स्तर पर हुए विस्थापन के कारण (स्वतः या जबरदस्ती) जनसंख्या के प्रारूप पर भी प्रभाव पड़ा। सफ़ावियों के शिया ईरान राज्य से सुन्नी मुसलमानों का पलायन उज़बेगों के सुन्नी ट्रांसऑक्सियाना की ओर हुआ तथा शिया मुसलमानों का पलायन सुन्नी ट्रांसऑक्सियाना से शिया ईरान राज्य की ओर हुआ।

इस क्षेत्र के तीनों राज्य अर्थात मध्य एशिया (ट्रांसऑक्सियाना), ऑटोमन टर्की एवं मुगल राज्य सुन्नी राज्य थे। इन तीनों राज्यों के बीच धर्म के आधार पर संबंधों में कटुता की संभावना न थी। जहाँ एक ओर उज़बेग, ऑटोमन जैसे अपने समकालीन साम्राज्य पर भरोसा रख सकते थे, वहीं दूसरी ओर सफ़ावियों के पास ऐसा कोई विश्वसनीय एवं स्थायी सहयोगी न था जिसके साथ 'समान धार्मिक

विश्वास' के आधार पर संबंध रखे जा सकते थे। धार्मिक मतभेदों के अलावा (जिनका राजनैतिक लक्ष्यों के लिए सोलहवीं शताब्दी में भरपूर उपयोग किया गया) ईरान के इन उपरोक्त राज्यों के साथ अन्य कई स्तरों पर मतभेद थे। भौगोलिक स्तर पर बहुत समीप होने के कारण उज़बेगों का विस्तार ईरान राज्य की ओर ही संभव था; साथ ही ईरान राज्य जहाँ एक ओर भौगोलिक तौर पर महत्वपूर्ण था वहीं यह व्यापारिक तौर पर संपन्न एवं उपजाऊ भी था। ऑटोमन साम्राज्य समुद्री व्यापार मार्गों पर अपना नियंत्रण बनाये रखने को उत्सुक था क्योंकि इसके हितों की पूर्ति होर्मुज (एक समृद्ध बंदरगाह), लाल सागर तथा हिन्द महासागर पर नियंत्रण रखने में थी। इस कारण से न केवल ईरान के साथ संघर्ष संभावित था अपितु कभी-कभी पुर्तगालियों एवं रूसियों के साथ भी। हिन्द महासागर क्षेत्र में ऑटोमन साम्राज्य के लिए पुर्तगाल लगातार एक खतरा बना हुआ था और इसी कारण ऑटोमन साम्राज्य पुर्तगालियों को समुद्र क्षेत्र से बेदखल करना चाहता था। इसलिए ईरानियों एवं पुर्तगालियों के मध्य यदा-कदा होने वाली मित्रता कोई आश्चर्य की बात न थी।

ईरान की व्यापारिक एवं सामरिक महत्ता, इसके गलीचे एवं रेशम उद्योगों तथा इसकी भूमि की उर्वरकता ने सदैव ही इसके पड़ोसियों के लालच को और अधिक बढ़ाया। इस प्रकार ईरान को लगभग निरंतर रूप में कभी ऑटोमन एवं कभी उज़बेगों के अभिलाषायुक्त तथा प्रसारवादी सैनिक अभियानों का सामना करना पड़ा। रूसी ज़ारों की दृष्टि ट्रांसऑक्सियाना पर थी और उन्होंने न केवल कज़्ज़ाकों को उज़बेगों पर आक्रमण करने के लिए उकसाया अपितु शिया ईरान के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करने के लिए आग्रह किया। इस प्रकार ईरान को पुर्तगालियों, रूसियों तथा आगे चलकर अंग्रेज़ों का अस्थायी समर्थन प्राप्त हुआ। ऐसा इस कारण से हुआ क्योंकि ये सभी अपने-अपने हितों को देखते हुए अपने विरोधियों के विरुद्ध ईरान को एक संतुलन बनाए रखने वाले राज्य के रूप में उपयोग करना चाहते थे।

भारत के साथ कंधार के क्षेत्र को लेकर ईरान कड़ा प्रतिरोधी था जिसके कारण ईरान की भारत के साथ शत्रुता से लेकर सशस्त्र संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। इसके बावजूद भी जब कभी भी मुगलों ने ईरानियों से मदद माँगी उन्होंने हमेशा दी। शाह इस्माइल ने बाबर की सहायता उज़बेगों के विरुद्ध की और हुमायूँ के साम्राज्य को पुनः स्थापित करने में ईरान के शासक तहमस्प ने निर्णायक सहायता प्रदान की। शाह अब्बास ने अकबर तथा जहाँगीर के साथ मित्रतापूर्वक संबंध बनाकर रखे और गोलकुण्डा, बीजापुर जैसे दक्खन के राज्यों को भी सहायता दी और उनके मामले की अकबर के सम्मुख वकालत की।

उज़बेगों का मानना था कि मुगल एक महत्वपूर्ण संतुलन प्रदान करने वाली शक्ति थी, यदि उनका थोड़ा भी झुकाव ईरान की ओर हो गया तब क्षेत्र की शांति एवं प्रगति में विघ्न उत्पन्न हो जाएगा। ऑटोमनों की उज़बेगों से कोई दुश्मनी नहीं थी तथा ईरान के प्रश्न पर उनके समान हित उन्हें नजदीक ले आए, यद्यपि मुगलों का ऑटोमनों के प्रति झुकाव नहीं था।

इस प्रकार शक्ति के दो गुटों के बीच पारस्परिक सौहार्द विद्यमान था अर्थात् एक ओर ऑटोमन साम्राज्य एवं उजबेगों के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध थे तथा दूसरी ओर मुगलों एवं ईरानियों के बीच परंपरागत मैत्रीपूर्ण सहमति थी।

बोध प्रश्न-3

1) मुगलों की उत्तर-पश्चिमी सीमांत नीति के संदर्भ में काबुल तथा कंधार के महत्व पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

2) उन भौगोलिक कारणों को बताइए जिससे भारत, ईरान तथा ट्रांसऑक्सियाना के बीच त्रिपक्षीय संबंधों का निर्धारण हुआ।

.....

.....

.....

3) उस विश्व स्थिति का विवेचन कीजिए जिसने मुगलों की मध्य एशिया एवं ईरान के प्रति नीति को प्रभावित किया।

.....

.....

.....

6.7 मुग़लों के उज़बेगों के साथ संबंध

जैसा कि **इकाई 4** में वर्णित किया गया है कि बाबर को मध्य एशिया से बाहर खदेड़ दिया गया था और इसके बाद उसने काबुल में बड़ी मुश्किलों का सामना करते हुए किसी प्रकार 1526 सी ई में भारत पर विजय प्राप्त की। अब हम निम्नलिखित उप-भागों में उज़बेगों के साथ मुगलों के संबधों की विवेचना करेंगे।

6.7.1 बाबर और हुमायूँ

बाबर के मध्य एशिया से बाहर निकल जाने के बाद उज़बेगों तथा मुग़लों के बीच परंपरागत संघर्ष कुछ समय के लिए थम गया था क्योंकि दोनों के बीच संघर्ष के लिए ऐसा कुछ शेष न रह गया था जैसा कि कंधार के मामले को लेकर ईरानियों के साथ था। 1528 सी ई में कुचूम तथा अन्य उज़बेग सुल्तानों ने भारत में अपने दूतों को बाबर की विजय पर उसको बधाई देने के लिए भेजा। उज़बेगों की ओर से भेजे गये इस मित्रवत् संदेश को मुगलों ने कोई विशेष महत्व न दिया और अपने 'पूर्वजों' की रियासत से बेदखल होने को वे कभी भी न भुला सके। ट्रांसऑक्सियाना को जीतने की इच्छा के बावजूद भी मुगलों को संभवत यह भी प्रतीत होता था कि उनकी यह अभिलाषा पूर्णतः अव्यवहारिक थी क्योंकि उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा उनके लिए एक स्थायी समस्या बनी हुई थी और कंधार को भी जीतना उनके लिए एक स्वप्न मात्र था। फिर वे ट्रांसऑक्सियाना को विजित करने की योजना कैसे बना सकते थे तथा कैसे इस दूरदराज स्थित 'पूर्वजों की भूमि' पर प्रभावशाली नियंत्रण को कार्यरूप दे सकते थे? इन सबके बावजूद भी बाबर ने हुमायूँ को ट्रांसऑक्सियाना के कुछ भाग को जीतने के लिए प्रोत्साहित किया। हुमायूँ ने असफलता या अस्थाई सफलता के साथ अपने प्रयासों को जारी रखा। इसके बावजूद ये प्रयास कोई स्थाई प्रभाव न छोड़ सके क्योंकि भारत में मुग़लों द्वारा अधीन किए गए क्षेत्रों का भी विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण होना शेष था। आगामी वर्षों में उज़बेगों तथा मुग़लों दोनों को अत्यधिक आंतरिक समस्याओं का सामना करना पड़ा जिसके कारण वे विस्तार अभियान को आगे न बढ़ा सके। अब्दुल्लाह खाँ के उद्भव (1560-98) के साथ मुग़ल-उज़बेग संबंधों के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ क्योंकि अब्दुल्लाह खाँ ने अकबर के साथ व्यापक संपर्कों को स्थापित करने का प्रयास किया।

6.7.2 अकबर

अकबर के शासनकाल के दौरान मुग़ल-उज़बेक संबंधों का तीन चरणों में (1) 1572-77, (2) 1583-89, तथा (3) 1589-98 में विवेचन किया जा सकता है।

प्रथम चरण (1572-1577)

अब्दुल्लाह द्वारा 1572 तथा 1577 में दो दूत मंडल भेजे गए। इन दूत मंडलों का उद्देश्य न तो अकबर से सैनिक सहायता प्राप्त करना था और न ही ईरानी साम्राज्य के विरुद्ध किसी संगठन को बनाने की संभावना खोजना था। बदख्शां तथा कंधार जैसे क्षेत्रों में रुचि रखने वाले अब्दुल्लाह खाँ की योजना के कार्यान्वयन के लिए उसके लिए यह स्वभाविक था कि वह अकबर के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों को विकसित करने के लिए प्रयास करे और इस प्रकार वह इस ओर से खतरे को टाल सकता था। जानकारी प्राप्त करने एवं सांत्वना देने वाले इन दो दूत मंडलों को निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए भेजा गयाः

1) ईरान तथा कंधार के प्रति अकबर के दृष्टिकोण का आकलन करने हेतु,

2) बदख्शाँ के संदर्भ में अकबर की सामान्य नीति का पता लगाने, तथा यदि संभव हो तो

3) बदख्शाँ के विषय में अकबर को अपनी स्वयं की योजनाओं के बारे में गलतफहमी में रखना।

उत्तर-पश्चिमी सीमा पर मिर्ज़ा हाकिम (काबुल का शासक) के विद्रोह के कारण और मिर्ज़ा हाकिम की ईरान के शासक शाह इस्माईल द्वितीय के साथ मित्रता के कारण भी अकबर को यह एहसास हुआ कि कहीं अब्दुल्लाह खाँ, मिर्ज़ा हाकिम तथा इस्माईल द्वितीय के बीच त्रिपक्षीय गठबंधन न बन जाए। दूसरे, अकबर बाह्य मामलों में स्वयं को उलझाना नहीं चाहता था इन्हीं कारणों से अकबर ने भी अब्दुल्लाह खाँ के प्रति मित्रतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। अब्दुल्लाह ने 1578 में पुनः अकबर के पास अपना दूत भेजा। ईरान पर संयुक्त तौर पर आक्रमण करने के प्रस्ताव को अकबर ने मानने से इनकार कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि अब्दुल्लाह की इस पत्र के प्रति प्रतिक्रिया सकारात्मक न थी क्योंकि आगामी एक दशक तक उसने मुग़ल दरबार में अपना कोई दूत नहीं भेजा।

1577 से अब्दुल्लाह खाँ तथा अकबर की क्रमशः स्थितियों में हुए परिवर्तन को देखा जा सकता है जिसके कारणवश एक दूसरे के प्रति उनकी नीतियों में परिवर्तन हुआ। 1583 तक अब्दुल्लाह खाँ ने संपूर्ण ट्रांसऑक्सियाना को विजित कर लिया और उसने अपने परिवार के उन सभी सदस्यों, जो उसके विराधी थे, को रास्ते से हटा दिया था। 1583 में अपने पिता की मृत्यु के बाद वह *खाकान* भी बन गया और अब वह मुस्लिम जगत में अपने सभी प्रतिद्वंद्वियों से प्रतियोगिता कर सकता था। अब्दुल्लाह ने अपनी स्थिति को मजबूत करने के साथ ही अकबर के प्रति एक कड़ा एवं माँग करने वाला दृष्टिकोण अपनाना शुरू कर दिया, वहीं अकबर का स्वयं का दृष्टिकोण सुलह-समझौते वाला बनने लगा।

इस समय तक अकबर की मुश्किलें और बढ़ीं। कश्मीर तथा गुजरात में विद्रोह हुए और काबुल, सवाद तथा बाजौर में कबीलाइयों के विद्रोह हुए। मिर्ज़ा हाकिम (1585) की मृत्यु के बाद उत्तर-पश्चिमी सीमा और भी असुरक्षित हो गई। ईरानी साम्राज्य भी असफल एवं अयोग्य तथा अर्द्ध-अंध शासक खुदाबंदा (1577-1588) के अधीन कमजोर पड़ गया और साम्राज्य ऑटोमनों के आक्रमणों तथा कुलीनों की आंतरिक कलहों के कारण बिखर गया था।

दूसरा चरण (1583-1589)

कई वर्षों बाद अब्दुल्लाह ने पुनः अपना एक दूत 1586 में अकबर के पास भेजा। अकबर ने इसका प्रत्युत्तर हाकिम हुमेम को 1586 में अपने दूत के रूप में भेजकर दिया। इसकी व्याख्या करनी बड़ी मुश्किल है कि अब्दुल्लाह ने एक समय में ही दो अलग-अलग पत्रों को भेजने का निर्णय क्यों किया। फिर भी इन पत्रों को मात्र कल्पित मानकर नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि अकबर ने अपने पत्र में उन सभी प्रश्नों का उत्तर दिया जिनको इन दोनों पत्रों में अलग-अलग उठाया गया था। अब्दुल्लाह के लिखित एवं मौखिक संदेश के स्तर से स्पष्ट है कि इस दूत को भेजने का उद्देश्य ईरान के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए अकबर का सहयोग प्राप्त करना न था, अपितु अकबर को ईरान के शासक को सहायता भेजने से रोकना था। अब्दुल्लाह का कहना था कि उसने 1578-1585 तक अकबर के सभी पत्र व्यवहार को इसलिए बंद कर दिया था क्योंकि 'अकबर ने अधिमनोविज्ञानीय (metapsychosis) धर्म तथा *जोगियों* का व्यवहार धारण कर लिया था और वह पैगंबर के धर्म से भटक गया था'। अकबर ने अपने दूत हाकिम हुमेम के माध्यम से भेजे गए उत्तर में यह कहा कि यह 'कुछ निश्चित विरोधी लोगों की जालसाजी एवं आरोपण मात्र है'।

तीसरा चरण (1589-1598)

अब्दुल्लाह के दरबार से अहमद अली अतालिक को भेजा जाना उज़बेक-मुग़ल संबंधों में तीसरे चरण का प्रारंभ था। अब्दुल्लाह ने अपने दूत के माध्यम से जो पत्र भेजा था, उसमें अब्दुल्लाह ने मित्रता करने की पेशकश की और 'पारस्परिक एकता की नींव को मजबूत करने तथा दोनों के बीच हिंदुकुश को सीमा बनाने के लिए प्रयत्न करने हेतु' इस दूत को भेजा। अकबर ने 1596 में कंधार की विजय के बाद ही शांति के प्रस्ताव को औपचारिक तौर पर स्वीकार किया। अकबर के प्रति अब्दुल्लाह द्वारा अपनाये जाने वाले सुलह-समझौते के इस दृष्टिकोण के कुछ सम्भावित कारण थेः

1) बदख्शाँ के शासक का पौत्र मिर्ज़ा शाहरुख तथा मिर्ज़ा हाकिम के पुत्र भारत आए और अकबर स्वयं काबुल में रुका रहा।

2) 1589 सी ई से ईरान की स्थिति में सुधार होना प्रारंभ हो गया था। शाह अब्बास ने ऑटोमन

शासकों के साथ एक अपमानजनक संधि इसलिए की क्योंकि वह उज़बेगों से निबटना चाहता था और उसने उज़बेगों के विरुद्ध अकबर की सहायता के लिए एक पत्र भेजा।

3) कज़्ज़ाकों के साथ अब्दुल्लाह के तनावपूर्ण संबंधों ने एक नया मोड़ लिया। इस समय कज़्ज़ाकों एवं रूस के ज़ारों के बीच के कूटनीतिक संबंध 1550 से 1599 सी ई तक सक्रिय रूप से जारी थे तथा इन कूटनीतिक संबंधों का प्रारंभ तैमूरिद शासन के समय 15वीं सदी में हुआ था। उज़बेग शासकों ने कज़्ज़ाकों तथा *खानेत* (Khanate) को 25 दूत मंडल भेजे जिनमें से 6 वापसी दूत मंडल थे (जिनमें जेन किंगस्न का भी था) लेकिन कज़्ज़ाकों ने उनको कोई विशेष महत्व नहीं दिया। दोनों के बीच संबंध अच्छे नहीं थे और उनको आक्रामक कूटनीतिक आर्थिक संबंधों की संज्ञा दी जा सकती थी। रूस के द्वारा बजान, अस्तरखान तथा साइबेरिया को जीत लिए जाने के बाद कज़्ज़ाक तथा रूसियों के बीच वाणिज्य तथा व्यापार के वे केन्द्र नष्ट हो गये थे जिनकी स्थापना तैमूर के द्वारा की गई थी। इसी प्रकार कज़्ज़ाक क्षेत्र को लेकर रूस के ज़ार एवं *खान* के बीच के संघर्ष ने कज़्ज़ाकों के पक्ष में संतुलन बना दिया क्योंकि उनके शासक तवक्कुल ने 1594 सी ई में अपने दूत मुहम्मद को रूस भेजा जो वहाँ से न केवल सशस्त्र सेना साथ लेकर आया अपितु ज़ार से कज़्ज़ाकों को पूर्ण कूटनीतिक सुरक्षा प्रदान करने का वचन भी प्राप्त किया।

4) अब्दुल्ला खाँ के पुत्र अब्दुल मोमिन के विद्रोह से उसकी स्थिति और बिगड़ गई। सन् 1592 सी ई में उसने दीन मुहम्मद (अब्दुल्लाह खाँ का भतीजा) को यह सलाह देते हुए *निशान* भेजे कि उसे कंधार को जीतने का विचार छोड़ देना चाहिए क्योंकि अकबर के साथ यह समझौता हो चुका है कि हिन्दुकुश एवं कंधार को दोनों राज्यों के बीच सीमा निर्धारण का आधार माना जाना चाहिए।

इन परिवर्तित परिस्थितियों में अकबर को प्रोत्साहन मिला, साथ ही वह अब्दुल्लाह खाँ के आक्रामक इरादों के प्रति भी पूर्णतः सजग था। इसी कारण से अकबर स्वयं पंजाब पहुँचा और 1589 से कंधार पर अधिकार करने की योजना बनाने लगा। अकबर ने कंधार जीत लिया और अंततः मिर्ज़ाओं को भारत वापस लाने में सफल हो गया। कंधार की विजय के बाद अकबर ने अब्दुल्लाह खाँ के साथ अपने संबंधों को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता को महसूस किया। कंधार पर अधिकार करने के बाद से ही मुग़ल सेनाएँ गर्मसीर तथा ज़मींदावर पर अधिकार करने के लिए उज़बेगों के साथ सशस्त्र संघर्ष में अब्दुल्ला के साथ व्यस्त थीं इस कारण अब्दुल्ला के साथ सामान्य संबंध बनाना और भी आवश्यक हो गया था। इसके अतिरिक्त 1594 में ऑटोमन सुल्तान मुराद तृतीय (r.1574-1595) ने ईरानी क्षेत्र पर संयुक्त आक्रमण करने के लिए सहयोग करने हेतु अब्दुल्लाह के पास एक पत्र भेजा। ऑटोमन-उज़बेक संभावित गठबंधन के भय ने अकबर को और सजग कर दिया। किंतु उज़बेगों तथा ऑटोमन साम्राज्य के बीच कोई सैनिक गठबंधन इस कारण न हो सका क्योंकि उज़बेग पत्रवाहक जब तक ऑटोमन दरबार पहुंच पाता कि इसी बीच ऑटोमन शासक सुल्तान मुराद तृतीय का 1595 में देहांत हो गया।

लेकिन उज़बेगों का भय निरंतर बना रहा क्योंकि अब्दुल्लाह ने नए ऑटोमन शासक मुहम्मद/मेहमेद तृतीय (r. 1595-1603) के साथ पत्र-व्यवहार प्रारंभ कर दिया था और ईरान पर संयुक्त आक्रमण करने का प्रस्ताव भी रखा। कंधार पर अधिकार करने के बाद ख्वाजा अशरफ नक़्शबंदी के माध्यम से अकबर ने तुरंत एक दूत अब्दुल्ला को भेजने की आवश्यकता को महसूस किया और उसने दोनों राज्यों की सीमाओं के रूप में हिंदुकुश को स्वीकार करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। इन संदेशों को साथ ले जाने वाले दूत की भेंट अब्दुल्लाह से सितंबर 1597 सी ई में क़रशी में हुई। अब्दुल्लाह ने मुगल दूत के साथ अपने संदेश वाहक के रूप में मीर कुरैश को भेजा लेकिन उनके भारत पहुँचने से पूर्व ही उज़बेग शासक अब्दुल्लाह की 1598 सी ई में मृत्यु हो गई। भारतीय राजदूत वापस भारत लौट गया किन्तु मीर कुरैश भारत पहुँचने में असमर्थ रहा।

6.7.3 जहाँगीर

तूरान के साथ जहाँगीर के संबंध मुख्यतः ईरान के साथ उसके संबंधों से सुनिश्चित होते थे। उसकी आत्मकथा से स्पष्ट होता है कि हालांकि उसका लगाव तूरान के साथ था, लेकिन उसकी योजनाओं में तूरान की विजय शामिल न थी। जहाँगीर के उज़बेगों के साथ संबंधों का अनुमान अंग्रेज यात्री थॉमस कोरयाट के उस अनुरोध से जिसमें 1616 में एक सिफारिश पत्र के लिए कहा गया था, के प्रति जहाँगीर के उत्तर से लगाया जा सकता है:

उसके और तातार राजकुमारों के बीच कोई विशेष मित्रता नहीं है और उसकी सिफारिशें कोरयाट को समरकन्द में मदद नहीं कर सकेंगीं।

जहाँगीर ने अपने शासनकाल के प्रथम दशक में उज़बेगों के साथ कोई सक्रिय संबंध नहीं बनाए। उसने केवल ऐसे प्रयासों पर ही ध्यान दिया जिनसे उसकी सीमाओं पर किसी भी प्रसारवादी मंसूबों को रोका जा सके। जहाँगीर की उज़बेगों के प्रति इस उदासीनता में तब परिवर्तन हुआ जबकि शाह ने अपने दूत ज़ैनुल बेग के द्वारा कंधार के प्रश्न को उठवाया। फरवरी 1621 में मीर बारका को एक 'अति गोपनीय उद्देश्य' से एक दूत के रूप में उज़बेग शासक इमाम कुली के पास भेजा गया और इसके बदले उज़बेग शासक ने अपने दूत को नूरजहाँ बेगम के पास भेजा। इस गोपनीय संदेश का जहाँगीर ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया क्योंकि इस संदेश में ईरान की आलोचना की गई थी और ईरानियों के विरुद्ध मुग़लों के साथ गठबंधन करने की भी सिफारिश की गई थी। जहाँगीर को पवित्र युद्ध में शामिल होने का निमंत्रण दिया गया था और यह इमाम कुली के लिए जरूरी था क्योंकि न केवल इमाम कुली अपने पिता की मृत्यु का बदला लेना चाहता था, अपितु वह मक्का को जाने वाले मार्ग को मुक्त करना चाहता था जिस पर ईरानियों का नियंत्रण था।

यद्यपि जहाँगीर ने टर्की के ऑटोमन सुल्तान के मित्रतापूर्ण प्रस्ताव की अवहेलना की थी लेकिन उज़बेग-ऑटोमन संभावित गठबंधन को लेकर वह काफी चिंतित था। 1624 में ईरानियों के आधिपत्य में बगदाद पर अधिकार करने के बाद सुल्तान मुराद ने इमाम कुली के पास ईरान के विरुद्ध गठबंधन बनाने के लिए सकारात्मक उत्तर भेजा और ईरानियों के आधिपत्य से ईरान को अपने अधीन करने के लिए उसको उकसाया। ऑटोमन सुल्तान ने इसी प्रकार का संदेश जहाँगीर के पास भेजा और ईरान के विरुद्ध त्रिपक्षीय गठबंधन बनाने पर बल दिया। 1625-1626 तक कई पत्रों का आदान-प्रदान हुआ, किंतु 1627 में जहाँगीर की मृत्यु हो जाने से इस योजना को कार्यान्वित ना किया जा सका।

6.7.4 शाहजहाँ

शाहजहाँ के सत्तासीन होने के साथ ही उज़बेग-मुग़ल संबंधों में एक नया मोड़ आया। शाहजहाँ की विदेश नीति के निम्नलिखित तीन लक्ष्य थेः

क) कंधार को पुनः प्राप्त करना,

ख) 'पूर्वजों की भूमि' को पुनः विजित करना, और

ग) दक्खन पर अपने पूर्ण प्रभुत्व को स्थापित करना।

उपरोक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वह ईरान तथा ट्रांसऑक्सियाना, दोनों समकालीन शक्तियों की मित्रता को ढंग से सुनिश्चित करना चाहता था, ताकि जब वह कंधार पर आक्रमण करे तब उसे ईरानियों के विरुद्ध ट्रांसऑक्सियाना की मित्रता का लाभ मिले और जब वह ट्रांसऑक्सियाना पर आक्रमण करे तब ईरान का सहयोग प्राप्त हो। शाहजहाँ ने कूटनीति का प्रयोग करते हुए नज़्र मुहम्मद के काबुल पर किए गए आक्रमण की अनदेखी कर अपना एक दूत बुखारा में इमाम कुली के पास भेजा। इन दूतों के आदान-प्रदान द्वारा ईरान के विरुद्ध एकता पर बल दिया गया। शाहजहाँ का दूतमंडल सफदर खाँ के नेतृत्व में गया जो अप्रैल 1633 में वापस लौटा। मीर हुसैन के रूप में दूसरा दूत मई 1637 में गया। जहाँगीर के विपरीत, शाहजहाँ ने 1636 में मुराद चतुर्थ को एक पत्र लिखा। इस पत्र में शाहजहाँ ने कंधार को विजित करने की अपनी इच्छा व्यक्त की और ईरान के विरुद्ध त्रिपक्षीय (मुग़ल-उज़बेग तथा ऑटोमन) गठबंधन बनाने का प्रस्ताव किया। लेकिन इनमें से किसी भी शासक की सहायता के बगैर शाहजहाँ ने कंधार को विजित करने में सफलता प्राप्त की।

1638 में कंधार पर विजय प्राप्त करने के बाद अब शाहजहाँ का एकमात्र लक्ष्य अपने 'पूर्वजों की भूमि' ट्रांसऑक्सियाना को विजित करना था। ईरान की सीमाओं से लगे मारूचक़ पर उज़बेगों के आक्रमण के बाद ईरान तथा मुग़लों के मध्य अप्रैल-मई 1640 में अपेक्षित मित्रतापूर्ण संबंध कायम हो गए। बल्ख पर एक संयुक्त आक्रमण का प्रस्ताव रखा गया, किंतु किसी कारणवश इसको कार्यान्वित न किया जा सका। इस समय ईरानियों एवं मुग़लों के बीच पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि मुग़लों ने ईरानियों पर सीमित समर्थन देने के लिए दबाव डाला और इसमें सफलता प्राप्त की जबकि ईरानियों के पत्रों में उनका भय एवं चिंता प्रतिलक्षित होती है। इसी प्रकार की चिंताएँ मुग़लों के निरूत्साही सहयोगी

उज़बेगों को भी थीं क्योंकि वह भी शाहजहाँ की प्रसारवादी अभिलाषा को समझ गए थे। शीघ्र ही मुग़लों को इसका अवसर प्राप्त हुआ।

इस समय उज़बेग साम्राज्य अराजकता के दौरे से गुजर रहा था। उज़बेगों के लोकप्रिय शासक इमाम कुली की दृष्टि चले जाने के कारण उसने नवम्बर 1641 सी ई में अपने भाई नज़्र मुहम्मद के पक्ष में पद त्याग दिया। नज़्र मुहम्मद के निरंकुश एवं एकछत्र शासन ने कुलीनों को विरोधी बना दिया था और वे उसके पुत्र अब्दुल अज़ीज़ का समर्थन करने लगे। निराशा के क्षणों में नज़्र मुहम्मद ने शाहजहाँ की सहायता प्राप्त करने के प्रयास किए किंतु शाहजहाँ ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए बल्ख को विद्रोहियों से बचाने के बहाने से बल्ख पर अधिकार कर लिया। 1646 सी ई के प्रारंभ में मुगल सेनाओं ने सफलतापूर्वक बल्ख में प्रवेश किया। नज़्र मुहम्मद को ईरान में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। शाहजहाँ ने इस समय दो पत्र लिखे। एक पत्र नज़्र मुहम्मद को बल्ख की विजय की सूचना देते हुए किसी क्षमा याचना या कारण दिये बगैर लिखा और दूसरा पत्र ईरान के शासक शाह अब्बास द्वितीय को बल्ख पर अधिकार करने की सूचना देने के लिए लिखा और इस प्रकार बल्ख विजय मुगलों द्वारा समरकंद एवं बुखारा को विजित करने की पृष्ठभूमि थी। बल्ख विजय को बल्ख के सैय्यदों को आवश्यक सुरक्षा प्रदान करने के आधार पर उचित ठहराया गया। इस पत्र के द्वारा यह भी संदेश दिया गया कि नज़्र मुहम्मद को मक्का भेजा जाए और उसे तूरान न लौटने दिया जाए। ईरानियों ने भी नज़्र मुहम्मद के मामले का समर्थन करने में स्वयं ही संकोच किया क्योंकि उनको उसके सफल होने पर संदेह था। वास्तव में शाहजहाँ ने तूरान के मामलों में ईरानियों की तटस्थता सुनिश्चित करने के लिए ईरान को तीन दूत भेजे। फिर भी नज़्र मुहम्मद के प्रति ईरानियों का दृष्टिकोण तय करने में यह एकमात्र कारक न था। उसकी सहायता न करने की ईरानियों की अनिच्छा का कारण न केवल नज़्र मुहम्मद का हठी चरित्र था, अपितु ईरानियों के मध्य परंपरागत शत्रुता भी थी। ईरान में एक योग्य नेतृत्व के अभाव में भी कोई सुनिश्चित नीति न तैयार हो सकी। ईरान में दूत के पहुंचने से पूर्व ही नज़्र मुहम्मद तूरान की ओर चल पड़ा था।

शाहजहाँ के लिए बल्ख तथा अन्य क्षेत्रों पर विजय उन पर अधिकार करने की अपेक्षा सहज प्रतीत हुई। कई कारणों से यह विजय कठिनाइयों से परिपूर्ण थी। इन कारकों में जहाँ तक अपर्याप्त संचार साधन थे वहीं इनमें खराब मौसम, सैनिकों पर धन तथा माल के रूप में भारी खर्च एवं स्थानीय जनता की शत्रुता भी शामिल थे। उसे खाली करवाना भी मुग़लों के लिए मुश्किल था और यह खाली करना समान रूप से ईरानियों के लिए भी कठिन था। अतः अक्टूबर 1647 में नज़्र मुहम्मद के साथ एक समझौता किया गया।

1650 में शाहजहाँ ने तूरान के उज़बेग शासक अब्दुल अज़ीज़ के पास एक दूत भेजा। किंतु तूरान में हुए राजनैतिक पुनर्गठबंधन के कारण अब्दुल अज़ीज़ के लिए मुश्किल स्थिति पैदा हो गई थी। उसके भाई सुभान कुली का समर्थन उसके ससुर अबुल ग़ाज़ी के द्वारा किया जा रहा था। अब ग़ाज़ी ख्वारिज़्म का शासक और ईरान का पक्का समर्थक था। शाहजहाँ ने अब्दुल अज़ीज़ पर काबुल पर आक्रमण करने के लिए दबाव डाला। शाहजहाँ के द्वारा ऑटोमन शासकों मुराद चतुर्थ (r. 1623-1640) तथा मुहम्मद/मेहमेद चतुर्थ (r. 1648-1687) के साथ गठबंधन के लिए किए गए प्रयास असफल रहे। ऑटोमन शासकों द्वारा शाहजहाँ को भेजे गए पत्रों का अभिप्राय शाहजहाँ को पसंद नहीं आया और न ही यह पारस्परिक समझ के लिए उत्साहवर्द्धक था। बल्ख पर मुग़लों के अधिकार को भी ऑटोमन शासकों ने पसंद नहीं किया। इस तरह मुग़ल-ऑटोमन संबंध सुदृढ़ न हो सके।

बोध प्रश्न-4

1) तीसरे चरण में (1589-1598) में उज़बेग-मुगल संबंधों की क्या विशिष्ट विशेषताएँ थीं?

.....

.....

.....

2) उज़बेगों के प्रति शाहजहाँ की नीति के क्या उद्देश्य थे?

.....

.....

.....

6.8 मुगलों के ईरान के साथ संबंध

मुगल-उज़बेग संबंधों से आपको भली-भाँति परिचित कराने के पश्चात् अब हम ईरान के साथ मुगल संबंधों की प्रकृति की विवेचना करेंगे।

6.8.1 बाबर तथा हुमायूँ

शाह इस्माइल के साथ बाबर के संबंधों की विवेचना हम की **इकाई 4** में कर चुके हैं। शाह इस्माइल की मृत्यु (1524 सी ई) एवं उसके पुत्र शाह तहमस्प (1524-76 सी ई) के सिंहासनारूढ़ होने के बाद बाबर ने शाह इस्माइल की मृत्यु पर एक शोक संदेश तथा तहमस्प के सिंहासनारूढ़ होने पर बधाई संदेशों के साथ एक दूत मंडल को ख्वाजगी असद के नेतृत्व में नये शाह के पास भेजा और वह ईरानी दूत सुलेमान आगा के साथ वापस लौटा।

इसी बीच हसन चैलेबी तथा उसके छोटे भाई के अधीन दो ईरानी दूतमंडल एक के बाद एक मुगल दरबार पहुंचे। बाबर ने भी उत्तर में अपने दूत को भेजा। इन पत्रों के उद्देश्यों तथा मौखिक संदेशों के आदान-प्रदान के कोई भी लिखित साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

बाबर की मृत्यु के बाद (1530 सी ई) हुमायूँ के भाई कामरान के पास काबुल का राज्य था तथा कंधार और लाहौर तक ईरानियों के विरुद्ध मजबूती से क्षेत्रीय प्रसार कर लिया गया था। 1534-35 सी ई में ईरानी राजकुमार साम मिर्ज़ा तथा उसके महत्वाकांक्षी कुलीन अघज़ीवर खाँ कामरान तथा कंधार के गवर्नर ख्वाजा कलां के साथ संघर्ष में व्यस्त थे। किंतु अघज़ीवर खाँ एक मुठभेड़ में मारा गया तथा साम मिर्जा हेरात वापस लौट गया। इस घटना के कारण शाह तहमस्प ने मुगलों के विरुद्ध 1537 सी ई में सात से आठ हजार सैनिकों के साथ एक सैनिक अभियान का नेतृत्व किया। एक समकालीन इतिहासकार का मानना है कि गवर्नर ख्वाजा कलां के द्वारा स्थिति का मूर्खतापूर्ण ढंग से संचालन करने से उसे कंधार के किले को शाह के सम्मुख समर्पण करना पड़ा जिसके कारण आसपास के क्षेत्र भी ईरानियों के अधीन हो गये। जिस समय शाह तहमस्प अज़रबैजान में विद्रोह से घिरा था और उसकी पश्चिमी सीमाओं पर तनाव बढ़ रहा था तब कामरान ने सन् 1537-38 सी ई में सरलता से कंधार को पुनः विजित कर लिया।

तेरह वर्षों (1530-43) तक हुमायूँ ने ईरान के साथ कोई सक्रिय संपर्क बनाकर नहीं रखा था। जब उसको 1543 सी ई के मध्य में भारत से खेदड़ दिया गया था तब हुमायूँ ने जनवरी 1544 सी ई में शाह को एक पत्र लिखा। हुमायूँ तथा तहमस्प एवं उसके अधिकारियों के बीच जिन पत्रों का आदान-प्रदान हुआ वे भारत-ईरानी संबंधों के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डालने के लिए उपलब्ध हैं। सीस्तान के ईरानी गवर्नर अहमद सुल्तान शामलूर ने निर्वासित मुगल शासक हुमायूँ को आमंत्रित किया और हुमायूँ ने ईरान में अपने पचास हताश वफादारों सहित शरण ली। ऐसा उसने बैरम खाँ की सलाह पर किया। तहमस्प को स्वयं अपने विद्रोही भाइयों के हाथों हार का सामना करना पड़ा था। उसने हुमायूँ की मुश्किलों के प्रति सहानुभूति दिखायी।

हुमायूँ ने सितंबर 1545 सी ई में ईरानी सेनापति बुदग़ खाँ से कंधार वापस प्राप्त कर लिया। यद्यपि दोनों पक्षों के बीच संबंधों में अस्थायी तौर पर तनाव पैदा हो गया था जिससे यह अनुमान लगाया जाने लगा था कि शिया धर्म को धारण करने की माँग से दरार पैदा हुई, लेकिन दोनों ओर से कुल मिलाकर सौहार्दपूर्ण संबंधों को बनाकर रखा गया। शाह तहमस्प ने वलद बेग तक्कालूर की अधीनता में 1546 सी ई में काबुल की विजय पर हुमायूँ को बधाई देने के लिए दूतमंडल भेजा। वापस लौटते दूत के माध्यम से हुमायूँ ने अपने पत्र में प्रसिद्ध ईरानी चित्रकार ख्वाजा अब्दुस समद तथा अन्य कुछ प्रतिभावान व्यक्तियों को अपनी सेवा में शामिल करने हेतु निमंत्रण भेजा। हुमायूँ ने अपने दूत ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद (1548 सी ई में भेजा गया) को वापस बुला लिया। एक अन्य दूत काज़ी शेख अली को 1549 सी ई में हुमायूँ ने बहराम मिर्जा की मृत्यु पर शोक संदेश देने तथा हुमायूँ के विरुद्ध उसके भाई कामरान मिर्ज़ा के विद्रोह को वर्णित करने के लिए ईरान भेजा। शाह तहमस्प का दूत कमालुद्दीन उलुग बेग उसका संदेश लेकर आया। हुमायूँ को सलाह दी गई कि कामरान के प्रति विनम्रता का रवैया अपनाये और जब भी आवश्यक होगा तब हुमायूँ को सैनिक सहायता प्रदान करने का प्रस्ताव रखा गया। तहमस्प की ओर से अंतिम दूतमंडल 1553 सी ई की प्रारंभिक ग्रीष्म ऋतु काल

में आया और इसके बाद हुमायूँ भारत में अपने प्रभुत्व को स्थापित करने तथा सुदृढ़ करने में व्यस्त हो गया।

6.8.2 अकबर

1556 सी ई में हुमायूँ की मृत्यु से पुनः कंधार की समस्या पैदा हो गई। शाह द्वारा कंधार पर अधिकार कर लिए जाने से ईरान के साथ संबंधों में तनाव पैदा हो गया। यही कारण था कि तहमस्प ने 1562 सी ई में अकबर के पास सईद बेग सफ़ावी के नेतृत्व में जो दूत मंडल भेजा (इसको हुमायूँ की मृत्यु पर शोक संदेश तथा अकबर के सत्तासीन होने पर बधाई देने के लिए भेजा गया था) उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। शाह तहमस्प ने सुल्तान महमूद भक्करी को कुलीन वर्ग में शामिल करने के लिए दो सिफारिशी पत्र लिखे किंतु उनकी भी अवहेलना की गई। जैसा कि अबुल फजल ने लिखा है कि राज्य नियुक्तियाँ गुणों के आधार पर होती थीं न कि सिफारिशों के आधार पर। उस समय भी कोई उत्तर न दिया गया जबकि 1572 सी ई में खुदाबंदा (ईरानी सिंहासन का दावेदार) ने यार अली बेग को अकबर के पास उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर होने वाले युद्ध में उसके समर्थन की आशा के साथ भेजा। तहमस्प की मृत्यु के बाद (मई 1576 सी ई) शाह इस्माइल द्वितीय सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने हकीम मिर्ज़ा के साथ मधुर संबंध बनाकर रखे। नवम्बर 1577 सी ई में खुदाबंदा के सिंहासनारूढ़ होने पर ईरान विद्रोह की चपेट में आ गया। 1583 सी ई में राजकुमार अब्बास ने मुर्शिद तबरीज़ी को अकबर के पास खुरासान प्रांत में उसकी स्थिति को मजबूती प्रदान करने हेतु भेजा। किंतु कंधार के हाथ से निकल जाने के कारण अकबर ईरानियों से नाराज था। अकबर ने याचिका की अवहेलना की तथा अबुल फज़ल ने इस याजिका को 'एक विद्रोही पुत्र की अपने पिता के विरुद्ध याचिका' की संज्ञा दी। सन् 1591 सी ई में शाह अब्बास ने एक बार फिर यादगार रूमलू के नेतृत्व में एक दूतमंडल को अकबर के पास उस समय भेजा जबकि उसको उज़बेगों से एक बड़े खतरे का सामना करना पड़ा। नवंबर 1594 सी ई में ज़ियाउद्दीन नामक एक और दूत भेजा गया। पुनः मौन रखा गया तथा रिश्तों में रूखापन मार्च 1595 सी ई तक बना रहा जब तक कि मुगल सेनाओं ने कंधार में प्रवेश कर ज़मींदावर एवं गर्मसीर को विजित नहीं कर लिया।

1596 सी ई में ख्वाजा अशरफ नक्शबंदी के माध्यम से अकबर ने प्रथम दूत को शाह अब्बास के पास भेजा। इस पत्र में अकबर ने अपनी कंधार विजय को यह कहकर उचित ठहराया कि शाह के प्रति मिर्ज़ाओं की वफादारी संदिग्ध थी। पहले पत्रों के प्रति अकबर ने अपने मौन रहने की व्याख्या यह कह कर की कि वह उज़बेग दूतों के रहते शाह की समय पर मदद करने में असफल रहा। 1598 में शाह अब्बास ने मनुचिहिर बेग को दूत के रूप में वापस लौटते भारतीय दूत के साथ भेजा। शाह ने एक अन्य दूत मिर्ज़ा अली बेग के द्वारा अकबर को कंधार किले के अलावा शेष सभी किलों को विजित करने की सूचना इस आशय के साथ दी कि अकबर उसको कंधार लौटा देगा। 1598 सी ई में अब्दुल्लाह खाँ की मृत्यु हो जाने के पश्चात् अपनी पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित समझ अकबर पंजाब से आगरा लौट आया। सन् 1602 सी ई में मनुचिहिर बेग को अकबर द्वारा हटाये जाने के बाद शाह के पास मुगल दूत के रूप में मासूम भक्कारी को भेजा गया। शाह ने दो पत्र भेजे एक अकबर को तथा दूसरा हमीदा बानू बेगम को। अकबर के अंतिम वर्षों में जहाँगीर के विद्रोह के बादल छा गए। कंधार के मुगल गवर्नर शाह बेग के कड़े प्रतिरोध के बावजूद फराह, खुरासान तथा ज़मींदावर के सेनापतियों ने अवसर का लाभ उठाते हुए बुस्त पर अधिकार कर लिया। शहज़ादा सलीम ने अकबर के जीवित रहते शाह अब्बास के साथ उपहारों तथा पारिवारिक सौहार्दता द्वारा स्वतंत्र मित्रतापूर्ण संबंध बनाकर रखें। इनके बावजूद अकबर के शासनकाल के अंतिम दिनों (22 अक्टूबर 1605 सी ई) में ईरान के द्वारा कंधार क्षेत्र में आक्रमण तथा उसके बाद फरवरी 1606 सी ई में किये गये ईरानियों के संगठित आक्रमण के कारण दोनों शासकों के बीच शत्रुतापूर्ण रवैये की शुरुआत हुई। खुसरो के विद्रोह के बावजूद भी ईरानी आक्रमण असफल साबित हुआ।

6.8.3 जहाँगीर

बधाई एवं शोक संदेश देने वाला प्रथम ईरानी दूतमंडल मुगल दरबार में मार्च 1611 सी ई में पहुंचा। यह दूतमंडल अगस्त 1613 सी ई में मुगल दूत खान आलम के साथ ईरान वापस लौटा। शाह अब्बास ने कई बड़े एवं छोटे दूतमंडलों को मुगल दरबार में भेजा। इस प्रकार ऐसे अनेक 'राजनैतिक

सौदेबाजियाँ करने वाले दूतमंडलों' का आदान-प्रदान हुआ। दोनों देशों के मध्य 'छुट-पुट' वस्तुओं जैसे, पांडुलिपियों, कलाकृतियों, वेधयंत्रों तथा अन्य ऐसी अनोखी वस्तुओं का भी आदान-प्रदान हुआ। कई बार शाह अब्बास ने जहाँगीर को कुछ विशिष्ट वस्तुएँ वेनिस एवं यूरोप से मंगवाकर भी भिजवाईं। शैरले भाइयों के नेतृत्व में एक दूतमंडल जून 1615 में पहुँचा। इससे पूर्व एवं बाद में भी इसी तरह के कई दूतमंडल मुगल दरबार में भेजे गये। किंतु ज़ैनुल बेग के नेतृत्व में दूतमंडल के साथ पुनः कंधार समस्या को उठाया गया। लेकिन जहाँगीर ने अपने सलाहकारों के साथ मशवरा करने के बाद ईरानियों को कंधार देने से इंकार कर दिया क्योंकि ऐसा करने पर इसे कमजोरी का प्रतीक माना जाता। जहाँगीर का विश्वास जीतकर एवं मुगलों की थोड़ी लापरवाही (अल्प मात्रा में तैनात मुगल सैन्य टुकड़ी) का अनुमान कर शाह अब्बास ने 11 जून, 1622 सी ई को कंधार पर अधिकार कर लिया। यद्यपि जहाँगीर को अपनी सीमाओं पर होने वाले षड्यंत्रों की जानकारी थी किंतु बहुत से अन्य कारणों से वह कंधार को सुरक्षित न रख सका। दरबार की राजनीति, जहाँगीर का गिरता स्वास्थ्य, नूरजहाँ एवं खुर्रम के बीच संबंधों में दरार, लाडली बेगम (नूरजहाँ के प्रथम पति से उसकी पुत्री) के जहाँगीर के पुत्र शहरयार के साथ विवाह को लेकर राजनैतिक शक्तियों का नया ध्रुवीकरण और खुर्रम (शाहजहाँ) का विद्रोह ऐसे कई कारण थे जिससे उसे कंधार से हाथ धोना पड़ा।

शाह अब्बास ने कंधार को लेकर जहाँगीर के क्रोध को दो दूतमंडल भेजकर शांत करने का प्रयास किया। एक अन्य दूतमंडल अक्टूबर 1625 सी ई में अक़ा मुहम्मद के नेतृत्व में आया। जहाँगीर ने इस पत्र का उत्तर कंधार के मामले पर कूटनीतिक मौन रखते हुए पुराने मित्रतापूर्ण संबंधों के लाभदायक स्वीकार्य के साथ दिया। अक्टूबर 1626 सी ई में नूरजहाँ बेगम के पत्र सहित ईरान को जहाँगीर द्वारा चार चत्र भेजे गये।

6.8.4 शाहजहाँ

चार दशक तक सफलतापूर्वक शासन करने के बाद शाह अब्बास की मृत्यु जनवरी 1629 सी ई में हो गई और नये एवं अनुभवहीन शासक शाह शफी मिर्जा ने अधीन ईरान अनिश्चिताओं के भंवर में फंस गया। शाहजहाँ कंधार पर पुनः अधिकार करने के लिए इस अवसर का लाभ उठाने के लिए उत्साहित था और शाहजहाँ ने न केवल ईरान के विद्रोही सरदार शेरखान का गर्मजोशी से स्वागत किया अपितु ईरान पर भारत, तूरान एवं टर्की की ओर से संयुक्त आक्रमण करने का प्रस्ताव मुराद चतुर्थ को लिखे पत्र में किया। शफी ने मुहम्मद अली बेग इस्फहानी के नेतृत्व में दूतमंडल, शाहजहाँ के द्वारा 20 अक्टूबर 1629 सी ई को मीर बरका के नेतृत्व में भेजे गये दूतमंडल के उत्तर में भेजा।

शाहजहाँ की उत्तर-पश्चिमी सीमा के प्रति नीति का मुगल संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। कंधार में तीन व्यर्थ के सैनिक अभियानों तथा बल्ख एवं बदख्शाँ के अभियान में न केवल धन की बर्बादी हुई अपितु यह मुगल सम्मान के लिए ही हानिकारक साबित हुए। ईरान के साथ शत्रुता के कारण ईरान द्वारा लगाए गए व्यापारिक प्रतिबंधों के कारण बहुत प्रकार के नुकसान हुए। कंधार की विजय सुसाध्य बनाने के लिए शाहजहाँ ने ईरानी गवर्नर अली मर्दान को यह वायदा करके लालच दिया कि भविष्य में वह कंधार उसे दे देगा, किंतु इस प्रस्ताव को उसने मानने से इंकार कर दिया। हालांकि, अली मर्दान द्वारा मुगलों का सामना करने के लिए सुरक्षात्मक उपाय किए, किंतु उसके शत्रुओं ने शाह सफी को उसके विरुद्ध यह कहकर उकसाया कि अली मर्दान विद्रोह करने की मंशा रखता है। अली मर्दान पर शाह ने अपने दरबार में उपस्थित होने के लिए दबाव डाला और उसके सभी तर्कों को मानने से इंकार कर दिया, तब अली मर्दान ने शाह के प्रति वफादारी दिखाने की अपेक्षा अपना जीवन सुरक्षित करने के लिए मुगलों के साथ मिल गया।

26 फरवरी 1638 सी ई को मुगल सेनाओं ने कंधार में प्रवेश किया और क़िलिज खाँ को इसका गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। कंधार पर अधिकार करने के पश्चात् शाहजहाँ ने शाह सफी को सांत्वना देने का प्रयास किया और कंधार के सालाना राजस्व के बराबर धन की अदायगी करने की पेशकश की। दूसरे मोर्चे पर शाह सफी ने ऑटोमनों के साथ सितंबर 1639 सी ई में शांति समझौता किया। इस समझौते से संतुष्ट हो शाह सफी ने मुगलों के साथ युद्ध करने की तैयारी प्रारंभ कर दी। लेकिन सैनिक अभियान प्रारंभ करने से पूर्व ही सन् 1642 सी ई में शाह सफी की मृत्यु हो गई। शाह अब्बास द्वितीय, जो अभी 10 वर्षीय बालक मात्र था, को उसके उत्तराधिकारी के रूप में सिंहासन पर बैठाया गया।

शाहजहाँ ने तुरंत बधाई देने के लिए एक दूतमंडल को भेजा तथा अपनी दृष्टि तूरान पर लगा दी। दूसरी ओर ईरान कंधार पर अधिकार करने का उत्सुक था। ऑटोमनों के साथ हाल में की गई संधि तथा मुगल गवर्नर की निष्क्रियता के कारण कंधार में व्याप्त अराजकता ने कंधार पर ईरानियों की विजय योजना को और भी सुनिश्चित कर दिया। शाहजहाँ की सलाह के बावजूद भी मुगल कुलीन सर्दियों में ऊंचाई वाले मुश्किल क्षेत्र की ओर प्रस्थान करने के लिए तैयार नहीं थे, और वृद्ध मुगल गवर्नर दौलत खाँ कंधार की रक्षा करने में असफल रहा। इस तरह शाह ने सरलता से दिसंबर 1648 सी ई में कंधार पर अधिकार कर लिया। मई 1649 सी ई में औरंगजेब ने मुगल *वज़ीर* सादुल्लाह के साथ आसपास के स्थानों पर अधिकार किया। ईरानी दूत शाह वर्दी जुलाई 1649 सी ई में कंधार, ज़मींदावर तथा अन्य क्षेत्रों को विजित करने के कारणों को बताने मुगल दरबार में आया और मुगल दरबार में उसे औपचारिक बैठक की अनुमति दी गई। लेकिन शीघ्र ही कंधार पर अधिकार करने के लिए दाराशिकोह तथा औरंगजेब के नेतृत्व में दो सैनिक अभियानों को भेजा गया। दुर्गम भौगोलिक परिस्थितियों तथा आपूर्ति मार्ग में रुकावट पैदा होने के कारण उनका उस प्रतिरोधी क्षेत्र में ठहरना मुश्किल हो गया। यदि बर्नियर के वृत्तांत का विश्वास किया जाये तो उसके वर्णन के अनुसार, यहाँ तक कि मुगल सेना के ईरानी सैनिक भी अपने देश के सैनिकों के विरुद्ध पूर्ण उत्साह से नहीं लड़े। लुटेरे उज़बेगों ने गजनी पर आक्रमण कर समस्या को और बढ़ाया। जबकि उनको भारी घूस दी गई थी। दारा एक सक्षम सेनानायक न था। इसलिए 1656 सी ई में शाहजहाँ के द्वारा कंधार के लिए चतुर्थ सैनिक अभियान को त्याग किया गया। एक समकालीन इतिहासकार ने ठीक ही कहा है कि कंधार अभियान का परिणाम तीस से चालीस हजार लोगों की मृत्यु एवं तीन करोड़ पाँच लाख रुपयों के व्यय के रूप में हुआ।

कंधार के अतिरिक्त मुगलों एवं ईरानियों के बीच दक्खन भी संघर्ष का कारण बना रहा। दक्खन के शिया शासक वंश (गोलकुण्डा के कुतबुल मुल्क तथा अहमदनगर के शिया निज़ाम) मुगल खतरे तथा अपनी 'पारस्परिक सांप्रदायिक एकता' के कारण ईरानियों की तरफ हो गये। 1573 सी ई से अकबर के द्वारा दक्खन के राज्यों के साथ कायम किये गये कूटनीतिक संबंधों तथा आगामी विजयों ने मुगल-दक्खन संबंधों की आधारशिला रखी। जहाँगीर के अधीन अहमदनगर तथा बीजापुर पर किये गये आक्रमण का नेतृत्व शाहजहाँ एवं खान-ए खानान ने किया तथा इस आक्रमण से बाध्य होकर दक्खनी राज्यों ने ईरानियों से मध्यस्थता का अनुरोध किया। कुली कुतब शाह (1590-1611 सी ई) तथा निज़ाम शाह के मुख्य सेनापति मलिक अम्बर के दूतों ने शाह अब्बास से सहानुभूति के लिए अनुरोध किया था। शाह अब्बास इस सीमा तक गया कि उसने दक्खनी राज्यों की सुरक्षा के बदले ईरान के कुछ भाग तक दे देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन 1617 सी ई तक दक्खनी राज्यों एवं मुगलों के मध्य समझौतों का दौर पूरा हुआ जो कि शाह के अप्रशंसनीय हस्तक्षेप के कारण नहीं, अपितु मुगलों की सुलह एवं बल प्रयोग की नीति के कारण संभव हुआ।

6.9 दक्खनी राज्य एवं ईरानी-मुगल कशमकश

मुगल-ईरान संबंधों में एक दशक तक कूटनीतिक ठहराव रहने के पश्चात् उस समय एक बार फिर तीव्रता आ गई जबकि दक्खन समस्या उत्पन्न हुई। 1633 सी ई में मुगलों द्वारा अहमदनगर पर अधिकार कर लिए जाने पर गोलकुण्डा हताश हो गया। शाहजहाँ ने 1636 सी ई में कुतब शाह तथा आदिल शाह को सुन्नी तरीके से *खुतबा* पढ़ने तथा ईरान के शाह का नाम *खुतबे* में सम्मिलित न करने के लिए दबाव डाला। गोलकुण्डा का शासक दबाव में आ गया। 1637 सी ई में शाह सफी ने अहमद बेग कुर्ची को आदिल शाह के पास दूत के रूप में प्रस्थान करने के लिए नियुक्त किया। लगातार दूतों के आदान-प्रदान सहित कुतब शाह ने अपने भतीजे के उच्च पदों (तब वह ईरानी दरबार से संबंधित था) का प्रयोग किया और यदि आवश्यक हो तो सुरक्षित पलायन करने तथा ईरान में शरण लेने का प्रस्ताव रखा। अब्दुल्लाह कुतब शाह ने हाकिम-उल मुल्क को 1641 सी ई में ईरान के शासक के दरबार में दूत के रूप में भेजा। मुगल अधिकारियों ने इसका विरोध किया तथा पत्रों के आदान-प्रदान पर रोक लगाने के लिए दबाव डाला। 1650 सी ई में एक ईरानी दूत अंग्रेजी जहाज़ से आया। कंधार को विजित करने के कारण ईरान का शाह लाभदायक स्थिति में था। ईरान-दक्खन संपर्क में इस कारण भी वृद्धि हुई कि ईरान में विस्थापित लोग दक्खनी राज्यों के दरबार में उच्च पदों पर थे। इस प्रकार का उदाहरण हीरों का सौदागर मुहम्मद सईद मीर जुमला था जिसने अपनी मातृभूमि के साथ संबंधों तथा

शाह अब्बास द्वितीय के साथ पत्र व्यवहार का हवाला दिया और इस प्रकार के अन्य लोग भी थे। अब्दुल्लाह कुतब मीर जुमला से ईर्ष्या करने लगा तथा अंततः मीर जुमला ने मुगल दरबार में शरण ली और अंतत: वह मुगल सेवाओं में शामिल हो गया। औरंगज़ेब दक्खन का गवर्नर था और उसने 1656 सी ई में गोलकुण्डा पर इस कारण से आक्रमण किया कि कुतब शाह ने मीर जुमला के पुत्र को कैद कर रखा था। यद्यपि शाहजहाँ के आदेश पर आक्रमण को रोक दिया गया, किंतु हैदराबाद एवं गोलकुण्डा के दूसरे भागों में भारी तबाही की गई। वहीं कर्नाटक पर मुगल दबाव जारी रहा। औंरगज़ेब के भयभीत करने वाले दबाव के कारण कुतब शाह ने ईरानी सहायता प्राप्त करने की कोशिश की।

ईरान का शाह पहले से ही राजकुमार मुराद बख्श तथा अन्य राजकुमारों एवं कुलीनों के साथ कूटनीतिक संबंध बनाये हुए था। शाहजहाँ के स्वास्थ्य की गिरती हालत तथा उत्तराधिकार के लिए संभावित युद्ध से उत्साहित होकर शाह ने मुराद के पास सेना भेज दी तथा मुराद ने 20 नवंबर 1656 सी ई को स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और शाह अब्बास द्वितीय के पास दो दूतमंडलों को भेजा।

शाह ने गोलकुण्डा तथा बीजापुर के शासकों से अपने मतभेदों को खत्म करने तथा मुगल साम्राज्य में व्याप्त अव्यवस्था एवं अराजकता से लाभ उठाने का आग्रह किया। किंतु औरंगजेब की विजय ने इन योजनाओं पर पानी फेर दिया। शाह अब दारा को भी सहायता करने में हिचकिचाने लगा।

औरंगज़ेब अपने अतीत के अनुभवों के कारण सावधान था और उसने अपनी उत्तर-पश्चिमी सीमाओं या कंधार पर शाह की लालसापूर्ण आक्रामक योजनाओं को कार्यान्वित नहीं होने दिया। फिर भी मुगलों एवं ईरानियों के बीच तनावपूर्ण संबंध जारी रहे।

बोध प्रश्न-5

1) शाह तहमस्प के साथ हुमायूँ के संबंधों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

2) आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं कि ईरान के साथ मुगल संबंध कन्धार की समस्या के इर्द-गिर्द घूमते रहे?

.....

.....

.....

3) जहाँगीर के शासनकाल में मुगल-ईरान संबंधों के मुख्य चरणों पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

6.10 औरंगज़ेब तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा

औरंगज़ेब की दक्खन राज्यों के प्रति शत्रुता में और वृद्धि उसके भाई तथा ईरान के शाह के बीच गुप्त वार्ताओं के कारण हुई। औरंगज़ेब ने ईरानी गवर्नर जुल्फीकार खाँ के माध्यम से अपनी बादशाहत की शाह से स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा की और जुल्फीकार ने 1660 में शाह की अनुमति के साथ तुरंत एक दूत भेजा। शाह के पत्र में प्राचीन मित्रतापूर्ण संबंधों तथा ईरान के शासकों ने मुग़लों की जो सहायता की थी उसका विवरण किया गया था और कंधार विजय के कारणों को भी बताया गया था। यद्यपि दूत का भव्य स्वागत किया गया था, किंतु पत्र का उत्तर उत्साहवर्धक न था। मुल्तान के गर्वनर तरबियत खाँ के अधीन एक वापसी दूत मंडल को मित्रतापूर्ण पत्र के साथ भेजा गया जिसमें कंधार विषय के प्रश्न को समाप्त अध्याय के रूप में माना गया था। लेकिन दोनों शासकों के संबंधों में और गिरावट आई और दूत की अशिष्टता (जिसने शाह के साथ माज़न्दरान जाने से इंकार कर दिया) ने

मुग़ल सम्राट के साथ शक्ति परीक्षण के लिए शाह को एक अवसर प्रदान कर दिया। शाह ने औरंगज़ेब को जो पत्र भेजा उसमें उसे भाई का हत्यारा तथा उसकी अप्रभावी सरकार के कारण उत्पन्न हुई अव्यवस्था को उद्धृत किया गया था। तरबियत खाँ के पहुंचने से पूर्व ही शाह के सैनिकों के आक्रमण के लिए प्रस्थान करने की इच्छा की सूचना औरंगज़ेब के पास पहुँच चुकी थी। युद्ध के लिए तैयारी प्रारंभ हो गई तथा ईरान के साथ सभी प्रकार के व्यापार पर प्रतिबंध लगा दिए गए। सूरत के गवर्नर को आदेश दिया गया कि ईरान को जाने वाले जहाजों को रोक लिया जाए। किंतु 1666 में शाह की मृत्यु के समाचार के कारण खतरा टल गया। लेकिन तरबियत खाँ को शाह के अपमानपूर्ण विचार विनम्रतापूर्वक सुनने के कारण हटा दिया गया और उसे एक वर्ष तक दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा नहीं दी गई।

अगला ईरानी शासक शाह सुलेमान (r.1666-1694) अपेक्षाकृत अयोग्य था तथा उसके धर्मपरायण तथा सदाचारी पुत्र और उत्तराधिकारी सुल्तान हुसैन (r.1694-1722) में कूटनीतिक एवं राजनैतिक मामलों की समझ कम थी। औरंगज़ेब कंधार अभियान में निहित समस्याओं से भली-भाँति परिचित था। उसने 1688 में हेरात के विद्रोही ईरानी गवर्नर की सहायता की। उसने राजकुमार मुअज़्ज़म को कंधार जाने के लिए राजी किया क्योंकि वह स्वयं जाटों, सिक्खों तथा मराठों की समस्याओं एवं अपने पुत्र अकबर, जिसने विद्रोह कर 1681 में स्वयं को सम्राट घोषित कर दिया था, जैसे मामलों में पहले से ही उलझा हुआ था। यद्यपि औरंगज़ेब शाह से सहायता प्राप्त करने का इच्छुक था लेकिन शाह ने ऐसा करने से इंकार कर दिया। तूरान के शासक अब्दुल अज़ीज़ तथा उसके भाई सुभान कुली के साथ कूटनीतिक संबंधों को मजबूत किया गया तथा सांप्रदायिक एकता पर बल दिया गया। 1685 में बाला मुर्घब पर आक्रमण की योजना तथा ईरान विरोधी गठबंधन बनाने का प्रस्ताव एवं ईरान पर संयुक्त आक्रमण पर विचार-विमर्श हुआ। लगभग ठीक उसी समय उज़बेग शासक अब्दुल अज़ीज़ ने शाह अब्बास द्वितीय (r.1642-1666) से मित्रता करने की कोशिश की। लेकिन ईरान-उज़बेग गठबंधन को कार्यरूप न दिया जा सका क्योंकि तूरान को उरगंज तथा ख्वारिज़्म के द्वारा चुनौती दी गई थी तथा वह आंतरिक एवं बाह्य कलहों से पीड़ित था और वहाँ कुशल नेतृत्व का अभाव था। इस काल में सफावी साम्राज्य भी धीमी गति से पतन की ओर अग्रसर था और निश्चित तौर पर विलीन होने वाला था। वह दक्खन राज्यों को समर्थन देने में असमर्थ था। 1687 तक औरंगज़ेब ने शेष बचे दक्खन राज्यों बीजापुर एवं गोलकुण्डा को नष्ट कर उनके क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। मध्य एशिया तथा ईरान की ओर से कोई खतरा विद्यमान न होने के कारण औरंगज़ेब की स्थिति और मजबूत हो गई।

इस प्रकार, औरंगज़ेब ने मुग़ल साम्राज्य को 'कूटनीतिक अलगाव की स्थिति' में छोड़ा और केवल 1698 में बुखारा से एक महत्वहीन प्रतिनिधि मंडल आया। यद्यपि औरंगज़ेब ने कभी भी कंधार को वापस लेने का सपना नहीं देखा था फिर भी मुग़ल-सफ़ावी संबंध क्रमशः बिगड़ते चले गए और यहाँ तक कि ऑटोमन शासक से आए एक प्रतिनिधि मंडल का भी कोई उत्तर न दिया गया।

बोध प्रश्न-6

1) औरंगज़ेब की ईरान के प्रति नीति पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

6.11 सारांश

इस इकाई में हमने अकबर के बहुत कम उम्र में सम्राट बनने के तथ्य के बारे में पढ़ा। आरंभिक चार वर्षों के लिए बैरम खाँ ने अकबर के संरक्षक के तौर पर कार्य किया। कुलीन वर्ग विभिन्न गुटों में बंटा हुआ था और प्रत्येक अपनी सर्वोच्चता स्थापित करने के प्रयास में लगा हुआ था। अकबर ने धीरे-धीरे स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त किया और अपने लिए कुछ कुलीनों का समूह बनाया जो उसके लिए विश्वसनीय हों। मुग़ल साम्राज्य का उस समय एक सीमित क्षेत्र पर नियंत्रण था।

अकबर ने विजय की नीति आरंभ की और पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण में विस्तृत क्षेत्रों को अपने

साम्राज्य का हिस्सा बनाया। यद्यपि दक्षिण में सफलता केवल दक्खन के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित थी। विजय के साथ-साथ, सुदृढ़ीकरण की प्रक्रिया भी आरंभ की गई। परिणामस्वरूप, विजित क्षेत्रों को एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के अंदर रखा गया। अकबर द्वारा संगठित साम्राज्य के अनुरक्षण की सफलता का पता इसके सौ वर्ष से अधिक रहे उत्तराधिकारियों द्वारा लगाया जा सकता है। औरंगज़ेब के शासनकाल के दौरान दक्षिण में (बीजापुर, गोलकुण्डा, आदि) और उत्तर-पूर्व में नए क्षेत्र जोड़े गए। मुग़ल शासकों की विशिष्ट उपलब्धि उनके द्वारा स्वायत्त सरदारों की मदद से साम्राज्य का विस्तार और सुदृढ़ीकरण करने में स्थित थी।

हमने इस इकाई में मध्य एशिया एवं ईरान के साथ मुगलों के संबंधों की विवेचना भी की है। वैश्विक स्थिति के साथ-साथ उन भौगोलिक कारकों पर प्रकाश डाला गया जिन्होंने मुगल विदेश नीति के स्वरूप को निर्धारित किया। कई मुगल शासकों के मध्य एशिया के उज़बेगों तथा ईरानी शासकों के साथ संबंधों की अलग-अलग विवेचना की गई। इस इकाई में किए गए विशलेषण का लक्ष्य उत्तर-पश्चिम सीमा के भू-राजनैतिक और व्यावसायिक महत्व को उजागर करना था और इस पर नियंत्रण करने के लिए मुग़लों, सफ़ावियों और उज़बेगों के मध्य यह संघर्ष का कारण बना रहा।

6.12 शब्दावली

अकबरनामा	अकबर के शासनकाल का आधिकारिक अभिलेखन, जिसे अबुल फज़ल द्वारा फारसी में लिखा गया था
खाकान	खानों का सरदार
परगना	कई गाँवों को मिलाकर बनाई गई एक प्रशासनिक इकाई
निशान	राजकुमार द्वारा दिया गया आज्ञा-पत्र
कज़्ज़ाक	मध्य एशिया की एक जनजाति
राज-प्रतिनिधि / संरक्षक	वह अधिकारी जो एक राज्य या साम्राज्य के वैध-सम्राट के नाबालिग होने या अन्य कारकों की वजह से सम्राट द्वारा शासन करने में असमर्थ होने के कारण प्रतिनिधित्व करता है
सूबा	प्रांत; अकबर ने संपूर्ण साम्राज्य को 12 प्रांतों में विभाजित कर दिया जिनको *सूबा* कहा गया। दक्खन की विजय के बाद 3 नए *सूबों* को शामिल कर लिया गया तथा अब इनकी संख्या 15 हो गई थी

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 6.2

2) देखें भाग 6.2

3) देखें उप-भाग 6.3.2

4) देखें उप-भाग 6.3.4

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 6.4

2) देखें भाग 6.5

बोध प्रश्न-3

1) भाग 6.1 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: काबुल तथा कंधार को ऐसे दोहरे द्वारों के रूप में माना गया जो मध्य एशिया एवं ईरान की ओर जाते थे। अकबर

काबुल एवं कंधार पर अधिकार बनाए रखकर उनको बाह्य आक्रमणों के विरुद्ध एक ढाल के रूप में प्रयोग करना चाहता था।

2) भाग 6.6 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: उज़बेग तथा सफ़ावी राज्यों की सीमाएँ आपस में मिलती थीं। ईरान की व्यापारिक संपन्नता एवं उर्वरकता तथा वास्तव में उसके भौगोलिक राजनीतिक महत्व के कारण उसका उज़बेगों से संघर्ष था। भारत तथा ईरान के बीच संघर्ष का मुख्य केन्द्र कंधार था क्योंकि यह भी भौगोलिक-राजनीतिक, वाणिज्यिकी एवं अन्य कारणों से महत्वपूर्ण था।

3) भाग 6.6 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: तैमूर तथा तुर्की राज्यों का दो राज्यों में विभाजन हो जाने के कारण मध्य तथा पश्चिम एशिया में उज़बेग एवं सफ़ावी दो राज्यों के रूप में अस्तित्व में आए। उन दोनों राज्यों में राजनीतिक एवं व्यापारिक लाभ के लिए इन क्षेत्रों पर अपनी-अपनी सर्वोच्चता कायम करने के लिए संघर्ष होता रहा।

बोध प्रश्न-4

1) उप-भाग 6.7.2 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: उज़बेग-मुगल संबंधों के तृतीय चरण में उज़बेगों ने मुगलों के प्रति सुलह-समझौते के दृष्टिकोण को अपनाया। इस समय के आस-पास मुगलों ने कंधार को विजित कर लिया था और वे उज़बेगों का विरोध करने की नीति का अनुसरण कर रहे थे।

2) उप-भाग 6.7.4 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: कंधार पर पुनः अधिकार करना, पूर्वजों की भूमि को पुनः विजित करना तथा दक्खन में अपने संपूर्ण नेतृत्व को स्थापित करना, आदि।

बोध प्रश्न-5

1) उप-भाग 6.8.1 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: हुमायूँ के भारत से निष्कासित हो जाने पर उसने ईरान में शरण ली तथा शाह तहमस्प ने उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। यद्यपि कंधार पर नियंत्रण तथा सांप्रदायिक मतभेदों के कारण उनके संबंधों में तनाव बना रहा फिर भी उन्होंने कुल मिलाकर अपने संबंधों को मधुर बनाकर रखा।

2) भाग 6.8 तथा उप-भाग 6.8.1 और 6.8.2 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: हुमायूँ ने कंधार को विजित किया। हुमायूँ की मृत्यु के बाद कंधार पुनः ईरानियों के हाथों में चला गया। अकबर ने इसे पुनः प्राप्त कर लिया। ईरानियों ने इस पर पुनः नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास किए किंतु असफल रहे।

3) उप-भाग 6.8.3 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्नलिखित तथ्यों को शामिल करें: ईरानी राजदूतों को मुगल शासक के पास भेजा गया। कंधार पर पुनः ईरान का अधिकार हो गया। जहाँगीर ने कूटनीतिक मौन को बनाए रखा।

बोध प्रश्न-6

1) भाग 6.10 को देखें। आप अपने उत्तर में निम्न तथ्यों को शामिल करें: औरंगजेब ने शाह की ओर से आए मित्रगत प्रतिनिधि मंडल का स्वागत किया और कंधार समस्या को मतप्राय माना गया। आगे चलकर दोनों के बीच संबंध बिगड़ गए। संबंधों में अस्थिरता मुख्य विशेषता थी।

6.14 संदर्भ ग्रंथ

हसन, मोहिबुल, (1985) *बाबरः फाउंडर ऑफ द मुग़ल एंपायर इन इंडिया* (नई दिल्लीः मनोहर पब्लिकेशन).

खान, ए. आर., (1977) *चीफ्टेन्स इन द मुग़ल एंपायर इन द रेन ऑफ अकबर* (शिमलाः आई आई ए एस).

बेनी, प्रसाद, (1962) *हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर* (नई दिल्लीः इंडिया प्रेस).

त्रिपाठी, आर.पी., (1963) *राइज एंड फॉल ऑफ द मुग़ल एंपायर, 1526-1727* (इलाहाबादः सैंट्रल बुक डिपो).

वर्मा, रमेश चंद्र, (1967) *फॉरेन पॉलिसी ऑफ द ग्रेट मुग़ल्स, 1526-1727 ए डी* (आगराः शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी).

6.15 शैक्षणिक वीडियो

हरबंस मुखिया इन किताब
https://www.youtube.com/watch?v=LRpHubqTPtY

देश देशांतरः रोल एंड कॉन्ट्रीब्यूशन ऑफ शेरशाह एंड अकबर
https://www.youtube.com/watch?v=i3zSukHOQmY

द मिथ एंड रियलिटी ऑफ एंपरर औरंगज़ेब – ऐन इलस्ट्रेटेड लेक्चर | द हिंदू लिट फॉर लाइफ 2019
https://www.youtube.com/watch?v=riEfw0JbtB0

इकाई 7 नायक राज्य*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 इतिहासलेखन

7.3 ऐतिहासिक स्रोत

7.4 *नायक* राज्यों का उदय तथा विकास

- 7.4.1 *नायकों* का आप्रवासन तथा विजयनगर राज्य
- 7.4.2 मदुरै, तंजौर तथा सेंजीः उद्भव
- 7.4.3 *नायक* राज्य निर्माण के आधार

7.5 *नायकों* के विजयनगर शासकों के साथ संबंध

7.6 *नायक* शासक तथा स्वायत्त सरदारः सुदृढ़ीकरण और प्रशासन

7.7 *नायक* राज्यों की युद्ध प्रौद्योगिकी

7.8 राजत्व, वैधानिकता तथा राजा की छवि

- 7.8.1 गौरवपूर्ण अतीत का गान
- 7.8.2 प्राधिकार के स्रोत के रूप में राजधानी नगर
- 7.8.3 शत्रु का प्रतिचित्रण

7.9 *नायक* राज्यों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था

7.10 सांस्कृतिक विकास

7.11 नवीन लोकाचार

7.12 *नायक* राज्यों का पतन

7.13 साराश

7.14 शब्दावली

7.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.16 संदर्भ ग्रंथ

7.17 शैक्षणिक वीडियो

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित के बारे में जान पाएँगेः

- मध्य सोलहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक के दक्षिण भारत का इतिहास,
- दक्षिण भारत के *नायक* राज्यों के उदय तथा उनके सुदृढीकरण के बारे में,
- *नायक* राज्यों में राजत्व की प्रकृति तथा वैधानिकता,
- *नायक* राज्यों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था,
- सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में नवीन सांस्कृतिक लोकाचारों का उदय, और
- मदुरै, तंजौर तथा जिंजी के *नायक* राज्यों का पतन।

* डॉ. रंजीता दत्ता, सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

7.1 प्रस्तावना

पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में, विजयनगर शासकों, कृष्णदेवराय (1509-29 सी ई) तथा अच्युतदेवराय (1529-1542 सी ई) के काल में, प्रशासन में बड़ी संख्या में *नायकों* का उदय हुआ। विजयनगर के राजाओं द्वारा इन *नायकों* को भू-क्षेत्र (*सीमा, सीमे, सिरमै*) आबंटित किए गए थे, जिसके बदले में इन *नायकों* को सैनिक टुकड़ी रखनी होती थी तथा राज्य की ओर से करों की वसूली करनी पड़ती थी। ऐसे *नायकतन* या *नायक्कट्टनम्* कहे जाने वाले भू-अनुदानों ने ही स्वतंत्र राजनीतिक व्यवस्थाओं का आधार तैयार किया, जिन्होंने क्रमिक रूप से विजयनगर शासन के दौरान राज्यों का दर्ज़ा हासिल कर लिया। इनमें से कुछ शक्तिशाली *नायक* राजव्यवस्थाएँ इक्केरी तथा ओडयार, क्रमशः उत्तरी तथा दक्षिणी कर्नाटक क्षेत्र में, और सेंजी (जिंजी), तंजावुर तथा मदुरै के *नायक* तमिल क्षेत्र में, क्रमशः तोंडईमंडलम्, चोलमंडलम् तथा पांड्यमंडलम् के पूर्ववर्ती क्षेत्रीय विभाजनों में स्थापित थे (वैगनर 1993: 24)। इन राजव्यवस्थाओं ने शक्तिशाली स्वतंत्र राज्य होने के बावजूद स्वयं को विजयनगर शासकों के स्वामिभक्त सामंतों के रूप में दर्शाकर विजयनगर साम्राज्य (1336-1672 सी ई) के प्रति प्रतीकात्मक निष्ठा का दावा किया। यह ध्यान में रखना चाहिए कि मुग़ल भी उसी समय शासन कर रहे थे जब दक्षिण भारत में *नायकों* की सत्ता थी। इस काल में जेसुइटों, विदेशी यात्रियों, ब्रिटिश, फ्रांसीसी, डच तथा अन्य यूरोपीय कम्पनियों के आगमन और *नायक* राज्यों के साथ उनकी अंतःक्रियाओं ने विशेष रूप से *नायक* राज्यों को प्रभावित किया, और सामान्य रूप से दक्षिण भारत के इतिहास को। *नायक* राजव्यवस्थाएँ अठारहवीं शताब्दी में 1730 के दशक तक अस्तित्व में बनी रहीं जब प्रमुख *नायक* राज्यों में से अंतिम, मदुरै का पतन हुआ।

यह इकाई सोलहवीं शताब्दी में इनके उदय के काल से लेकर प्रारम्भिक अठारहवीं शताब्दी में इनके पतन होने तक *नायक* राज्यों के ऐतिहासिक महत्व, स्रोतों, विशेषकर अलग-अलग *नायक* राज्यों में रचित लिखित विवरणों, राजनीतिक व्यवस्थाओं के पहलुओं, प्राधिकार और वैधानिकता, राजनीतिक अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक विकासक्रमों की विवेचना करेगी। यह इकाई नवीन लोकाचारों के उदय को उजागर करेगी जो न केवल राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण था, बल्कि अपनी समृद्ध संस्कृति के लिए भी ध्यान देने योग्य है।

7.2 इतिहासलेखन

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर मध्य अठारहवीं शताब्दी तक का काल, अर्थात् विजयनगर के शासक राम राजा (1542-1565 सी ई) की दक्खनी सल्तनतों बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बीदर और बरार के हाथों पराजय के बाद से लेकर 1761 सी ई में हैदर अली के उदय तक के काल को वस्तुतः अनदेखा किया गया है और इसे 'दक्षिण भारत के इतिहास में अंधकूप जैसा समझा जाता है' (राव तथा अन्य 1992: x)। कई ऐतिहासिक शोध इस काल को विचारयोग्य नहीं मानते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह तालीकोटा में 1565 सी ई में विजयनगर की सेनाओं की पराजय के साथ विजयनगर साम्राज्य के पतन तथा विभिन्न राजव्यवस्थाओं की उपस्थिति से राजनीतिक अव्यवस्था का आभास देता है। अतः इस काल में अस्तित्व में रहे शक्तिशाली *नायक* राज्यों के इतिहास पर हाल के समय तक विद्वानों का अधिक ध्यान नहीं गया था।

यह स्पष्ट किए जाने की ज़रूरत है कि विजयनगर शासकों की पराजय तथा हम्पी के निकट स्थित राजधानी के परित्याग के बाद भी, विजयनगर शासकों के अंतिम वंश, **अराविडु** (1570-1646), के शासन के अधीन लगभग अगले सौ सालों तक साम्राज्य अस्तित्व में बना रहा था। अराविडुओं ने स्वयं को पेनुकोंडा और उसके बाद दक्षिण आंध्र के तिरुमला-तिरुपति मठ के निकट चंद्रगिरी के दुर्गीकृत स्थलों में स्वयं को स्थापित किया। 1614 सी ई में उत्तराधिकार को लेकर हुए एक गृह-युद्ध ने अराविडुओं के पास एक बहुत छोटी सी रियासत मात्र ही शेष छोड़ी थी। विजयनगर राजाओं में अंतिम श्रीरंग तृतीय की मृत्यु 1672 सी ई में हुई थी, **तालीकोटा की लड़ाई** (राक्षस-तंगड़ी के रूप में भी विख्यात) के सौ साल से भी अधिक समय के बाद।

इसके अतिरिक्त, कई *नायक* राज्यों के अस्तित्व और एक शक्तिशाली विजयनगर साम्राज्य की अनुपस्थिति का तात्पर्य अराजकता नहीं होता है। *नायक* राज्यों के विकास और सुदृढ़ीकरण से सुसंगत

यह काल दक्षिण भारत के इतिहास में राजनीतिक रूप से गतिपूर्ण कालों में से एक था। नवीन लोकाचारों से युक्त सांस्कृतिक रूप से जीवंत इस काल में, *नायक* राज्य अपने परिष्कृत मंदिरों, नगर स्थापत्य, तथा कलात्मक और सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए विख्यात थे, जिसमें द्राविड़ और इस्लामी दोनों प्रभाव झलकते हैं। दक्षिण भारतीय कला की शास्त्रीय शैली से संबंध रखने वाली विख्यात तंजौर चित्रकला का तंजावुर के *नायक* राज्य में विकास हुआ था। *नायकों* और विजयनगर राज्य के बीच संबंध अध्ययन हेतु आकर्षक विषयवस्तुओं में से एक हैं। ये *नायक* राज्य, यद्यपि, एक समय विजयनगर राज्य का हिस्सा थे, एक विशिष्ट राजनीतिक और भौगोलिक पहचान धारण करते थे, और इनका एक विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश था।

इतिहासलेखन के रूप में सेंजी, इक्केरी, ओडयार, मदुरै तथा तंजौर के राज्यों के अलग-अलग अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया गया है। इनमें मदुरै पर आर. सत्यनाथ का (1924), सेंजी पर श्रीनिवासाचारी का (1943), तंजौर पर वृद्धगिरीसन का (1947) तथा इक्केरी पर के. डी. स्वामीनाथन का कार्य (1967) विशिष्ट हैं। ये रचनाएँ विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग कर संबंधित *नायक* राज्यों का व्यापक भौगोलिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास उपलब्ध कराती हैं तथा इन्होंने उस आधारशिला का निर्माण किया है, जिस पर बाद के इतिहासलेखन संबंधी शोध आधारित रहे हैं। वेल्वेरू नारायण राव, डेविड शुलमैन तथा संजय सुब्रह्मण्यम की *सिंबल्स ऑफ़ सबस्टेंस* (1992) नामक कृति तथा इसके बाद आने वाली फ़िलिप बी. वैगनर की *टाइडिंग्स ऑफ़ द किंग* (1993) कृति *नायक* शासकों के इतिहास को समझने हेतु उपयोगी योगदान हैं।

सिंबल्स ऑफ़ सबस्टेंस तंजौर, मदुरै तथा सेंजी के तीन प्रमुख *नायक* राज्यों तथा इनकी परिधि से लगी हुई छोटी राजव्यवस्थाओं की राजनीतिक संस्कृति पर विचार करती है। यह पुस्तक व्याख्या करती है कि *नायक* काल में होने वाला संक्रमण इस क्षेत्र में तेलुगु क्षेत्र से कई समूहों के होने वाले आप्रवास के कारण पैदा होने वाले सामाजिक प्रवाह तथा *नायक* राज्यों में मौजूद सीमांत समूहों की राजनीतिक रूप से प्रभावपूर्ण स्थिति की ओर होने वाली सामाजिक गतिशीलता से घटित हुआ था। यह युद्ध तथा संघर्षों के विषयों और *नायकों* के राजत्व की प्रकृति को भी उजागर करती है। इन इतिहासकारों के अनुसार, *नायकों* के राजत्व का सीमित राजनीतिक प्राधिकार था, किंतु वे गौरवशाली राजव्यवस्था के बढ़ा-चढ़ा कर दावे करते थे। संस्थाओं के उदय की चर्चा करते हुए इतिहासकार अपने तर्कों की पुष्टि के लिए इस काल के साहित्यिक स्रोतों का भी विश्लेषण करते हैं।

टाइडिंग्स ऑफ़ द किंग एक तेलुगु ग्रंथ *रायवाचकमु*, जो कृष्णदेवराय के काल से संबंध रखता है, का अनुवाद और इसका नृजातीय-ऐतिहासिक विश्लेशण है। लेकिन, वैगनर यह स्पष्ट करते हैं कि इस ग्रंथ को मदुरै के *नायक* दरबार में कृष्णदेवराय के काल से सौ साल से भी अधिक समय बाद लिखा गया था। इसे वैगनर के मुताबिक़, मदुरै के शासक हेतु, स्वयं के शक्तिशाली और प्रसिद्ध राजा कृष्णदेवराय के स्वामिभक्त वंश होने का दावा कर, राजनीतिक वैधानिकता पाने के उद्देश्य से लिखा गया था। किंतु इसके साथ ही यह अराविडु वंश के विजयनगर के समकालीन शासक के राजनीतिक प्राधिकार को स्वीकार नहीं करता है, क्योंकि वह कमज़ोर था और पतन की ओर अग्रसर था। इस तरह का विरोधाभास इस ग्रंथ में प्रकट होता है, जैसा कि आगे यह कहता है कि अराविडु वंश किसी भी प्रकार का नैतिक और आनुष्ठानिक प्राधिकार धारण नहीं करता है क्योंकि इस प्राधिकार का स्रोत, राजधानी-नगर, विजयनगर, 1565 सी ई में दक्खन के मुस्लिम राज्यों के संघ द्वारा विनष्ट हो गया था और उतनी प्रतिष्ठा का कोई भी नगर उसके बाद कभी विकसित नहीं हुआ।

7.3 ऐतिहासिक स्रोत

नायक काल के इतिहास के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोत हैं। *नायक* शासकों के संरक्षण में निर्मित बहुत से मंदिरों में पत्थरों की दीवारों पर उकेरे गए अभिलेख महत्वपूर्ण स्रोत हैं जो हमें भूमि-अनुदानों, दाताओं तथा दान ग्रहण करने वालों के विषय में और विभिन्न आनुष्ठानिक और प्रशासनिक गतिविधियों के संबंध में जानकारी प्रदान करते हैं। लेकिन, सोलहवीं शताब्दी के बाद इन अभिलेखों की संख्या कम होने लगी थी।

सेंजी, मदुरै, तंजावुर और अन्य राज्यों के *नायक* दरबारों के संरक्षण में रचित बहुत से साहित्यिक ग्रंथ भी हैं, और हाल के समय में उन्हें *नायक* इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में देखा जा रहा है। इन

ग्रंथों को तेलुगु , संस्कृत और तमिल में लिखा गया है और ये मुख्यतः 'दरबारियों, राजसी-गणिकाओं, पंडितों और अधिकारियों के एक शिक्षित और बहुभाषी पाठक-समूह' हेतु लिखे गए थे (राव तथा अन्य 1992: 334)। ये साहित्यिक ग्रंथ सामान्यतः गीतों तथा नृत्य और श्रृंगार के विषयों से युक्त ***यक्षगान***-नाटकों के रूप में रचित दरबारी नाटक, मिथकीय विषयों के साथ गद्य और पद्य की मिश्रित शैली (*चंपू*) में लिखे गए काव्य ग्रंथ, इतिवृत्त तथा व्याकरण, दर्शन और ज्योतिष पर लिखे गए *प्रबंध*, भक्ति काव्य, अन्य लघु कृतियाँ (*लघुकाव्य, प्रबंध*) तथा अन्य विविध प्रकार के थे।

नायक काल से संबंध रखने वाले साहित्यिक स्रोतों की प्रकृति को दर्शाने के लिए ऊपर उद्धृत *रायवाचकमु* के उदाहरण का यहाँ संक्षेप में विवेचन किया जाएगा। *रायवाचकमु* की रचना *स्थानपति* द्वारा की गई थी, जो मदुरै के शासक विश्वनाथ *नायक* (1595-1602 सी ई) का प्रतिनिधि था। राय (राजा) के कूटनीतिक 'प्रतिवेदन' या 'संवाद' (*वाचकमु*) के रूप में लिखा गया, यह ग्रंथ कृष्णदेवराय के समय की राजनीति, कला, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास के काल के रूप में विजयनगर राज्य की राजनीतिक घटनाओं और गतिविधियों की पुनर्व्याख्या करता है (वैगनर 1992: 3)। वैगनर के अनुसार, लेखक के इस दावे के बावजूद कि वह इस ग्रंथ को लिखते समय कृष्णदेवराय के दरबार में प्रतिष्ठित था, *रायवाचकमु* की रचना सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में मदुरै *नायक* के दरबार में हुई थी (वैगनर 1993: 7-10)। कई विद्वानों के अनुसार, यह ग्रंथ नृजातीय-इतिहास की कृति है अर्थात 'अतीत के विषय में एक देशी विमर्श', जिसे इसी के सांस्कृतिक संदर्भ में समझने की आवश्यकता है न कि आधुनिक ऐतिहासिक विश्वदृष्टि के हिसाब से (डर्क्स 1987: 57-8)। इस प्रकार *रायवाचकमु, नायक*-काल में, सत्रहवीं शताब्दी के मदुरै के 'बौद्धिक जगत' में स्थापित था और इसके 'अनुभवों और संवेदनाओं' को प्रतिबिंबित करता था (वैगनर 1993: 8)। और यह उस काल की जानकारी का प्रमुख स्रोत है।

उन विदेशी यात्रियों के विवरण, जो इस काल में *नायक* दरबारों में आए, भी इस काल पर महत्वपूर्ण सूचना उपलब्ध कराते हैं। उदाहरणार्थ, इतालवी व्यापारी सीज़र फ़ेडरिची और गैस्पैरो बाल्बी, फ़्लैंडर्स के रत्न व्यापारी जाक डि कोत्रे और आइसलैंड के यात्री जॉन ओल्फसन के विवरण इस काल के इतिहास को समझने में उपयोगी हैं (राव तथा अन्य 1992: 338)। 1540 के दशक के बाद के जेसुइटों के कई भागों में प्रकाशित पत्र *नायक* राज्यों की दरबारी राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों की जानकारी हमें उपलब्ध कराते हैं। सोलहवीं शताब्दी से संबंधित पुर्तगाली रिकॉर्ड तथा अंग्रेज़ी और डच कंपनियों के आर्मगॉन, मद्रास और पुलिकट की फैक्ट्रियों से संबंधित दस्तावेज़ भी हमें समृद्ध जानकारी से परिचित कराते हैं, विशेषकर कोरोमंडल के संबंध में।

इन विभिन्न स्रोतों की प्रकृति के आधार पर इन स्रोतों के मतों में भी भिन्नता थी। उदाहरण के लिए, *नायक* दरबारों में सृजित साहित्य ग्रंथ हमें यह विश्वास दिलाते हैं कि *नायक* शासक शक्तिशाली थे और विजयनगर के राजनीतिक प्राधिकार से स्वतंत्र थे। लेकिन, जेसुइटों के विवरण तथा डच और पुर्तगाली दस्तावेज़ एक बिल्कुल ही दूसरा चित्र प्रस्तुत करते हैं। डच और पुर्तगाली दस्तावेज़ हमें यह सूचना देते हैं कि सत्रहवीं शताब्दी के बड़े *नायक* नियमित रूप से विजयनगर के राजा को भेंट प्रदान करते थे। यदि कोई *नायक* इस हिस्से का भुगतान करने में चूक कर जाता था या इससे इंकार कर देता था तो विजयनगर के राजा सेना भेजकर उस भेंट की उगाही करते थे। ऐसा ही हमें सेंजी के विषय में देखने को मिलता है जिसने भेंट देने से इंकार कर दिया था और विजयनगर शासक वेंकट द्वितीय द्वारा उसे सैन्य बल के प्रयोग से अधीनस्थ करना पड़ा। 1614 सी ई के गृह युद्ध के बाद भी विजयनगर साम्राज्य के राजवंश की प्रतिष्ठा के पर्याप्त रूप से कम हो जाने पर भी *नायकों* ने अपने राजस्व-संग्रह का एक चौथाई हिस्सा भेंट के रूप में देना जारी रखा (राव तथा अन्य, 1992: 105-7; काराशिमा 2014: 227)।

बोध प्रश्न-1

1) *नायक* राज्यों की तीन विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

.....

.....

2) निम्नलिखित को सुमेलित कीजिए:

i)	इक्केरी	a)	पांड्यमंडलम्
ii)	मदुरै	b)	तोंडईमंडलम्
iii)	ओडयार	c)	चोलमंडलम्
iv)	सेंजी	d)	दक्षिण कर्नाटक
v)	तंजावुर	e)	उत्तरी कर्नाटक

3) सही कथन के लिए (✓) और ग़लत कथन के लिए (×) का चिह्न लगाए।

i) अच्युतदेवराय विजयनगर साम्राज्य का अंतिम शासक था। ( )

ii) 1565 सी ई में घटित तालीकोटा का युद्ध विजयनगर साम्राज्य के अंत को चिह्नित करता है। ( )

iii) *नायक* शक्तिशाली शासक थे जो विजयनगर के शासकों से अपने सम्बन्धों का दावा करते थे। ( )

iv) साहित्यिक ग्रंथ अतिश्योक्तिपूर्ण वृत्तांत हैं जो *नायकों* के इतिहास को समझने में सहायक नहीं हैं। ( )

7.4 *नायक* राज्यों का उदय तथा विकास

कुछ इतिहासकारों के अनुसार, *नायक* राज्यों का उदय 1565 सी ई में विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद हुआ। यद्यपि, विजयनगर का शासन इस युद्ध के बाद भी सौ साल से अधिक समय तक अस्तित्व में बना रहा जो सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्वतंत्र *नायक* राज्यों के साथ-साथ अस्तित्व में बना रहा था। वस्तुतः, 1565 सी ई के बाद भी विजयनगर के शासक *नायक्कट्टनम्* को आवंटित करना जारी रखे थे।

7.4.1 *नायकों* का आप्रवासन तथा विजयनगर राज्य

अधिकांशतः राजनीतिक अभिजात्य *नायक* अपने मूल से तेलुगु थे और अपने मूल को आंध्र क्षेत्र से आप्रवासन करने वाले योद्धा समूहों के वंशों में खोजते थे, जो चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी के दौरान विजयनगर साम्राज्य के कन्नड़ और तमिल क्षेत्रों में आबाद हो गए थे। उन्हें ***वडुगा*** या उत्तरी प्रदेश के निवासी – तमिल देश में तेलुगु आप्रवासियों के लिए प्रयुक्त होने वाला एक शब्द – कहा जाता था। इस प्रकार, उनका सामाजिक-राजनीतिक संसार हमेशा आंध्र क्षेत्र में रहा था (राव तथा अन्य 1992: 7)। यह माना जाता है कि उनमें से अधिकांश तेलुगु भाषी बलिजा जाति-समूह से संबंध रखते थे और जो अधिक गतिशील तथा अपने स्वभाव में युद्धप्रिय तथा व्यापार-निपुण, दोनों ही थे। उन्होंने *नायक* राज्य-तंत्रों तथा उनकी सांस्कृतिक और राजनीतिक परंपराओं में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उदाहरण के लिए, बलिजाओं ने मदुरै तथा तंजावुर *नायक* राज्यों की राजस्व व्यवस्था को नया स्वरूप प्रदान किया (राव तथा अन्य 1992: 10)। चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में कई योद्धा समूह कन्नड़ क्षेत्र से आकर भी तमिल क्षेत्र में आबाद हुए थे।

निस्संदेह, *नायक* राजव्यवस्थाएं उस प्रशासनिक शक्ति से उभरीं और विकसित हुई थीं जो *नायक* अधिकारियों को विजयनगर शासन के दौरान प्रदत्त क्षेत्रों में उन्हें उपलब्ध थीं। अभिलेखीय साक्ष्य पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में, विशाल संख्या में *नायक* अधिकारियों की मौजूदगी की पुष्टि करते हैं। फ़र्नाओ नूनिज़, एक पुर्तगाली यात्री, हमें यह सूचना देता है कि 'ऐसे दो सौ कप्तान' थे जिन्हें विजयनगर राजाओं ने अधिक्षेत्र बाँटे हुए थे और *नायकों* को 'इसके बदले में अपने क्षेत्रों में राजस्व का संग्रह करना होता था और राज्य को एक निश्चित राशि भेजनी होती थी और साथ ही अपने क्षेत्र में सामान्य प्रशासन के संचालन के अतिरिक्त, राजा के लिए एक निश्चित आकार में सैन्य टुकड़ियों का प्रबंध भी करना होता था' (काराशिमा 1992: 195-6)। इन *नायक* अधिकारियों के बीच भी एक

प्रकार का पदानुक्रम मौजूद था। इनमें से बहुतों को अधिस्वामी का दर्जा हासिल था, तो अन्य दूसरे मात्र अधीनस्थ स्वायत्त सरदार या बड़े *नायकों* के प्रतिनिधि मात्र थे। अध्ययनों द्वारा यह संकेत मिलता है कि राजा उनका स्थानांतरण करता था, किंतु जब शासकों का राजनीतिक प्राधिकार कमजोर होने लगा, विशेषकर 1565 सी ई के बाद, कुछ *नायकों* ने अपने संबंधित क्षेत्रों में अपनी स्वतंत्रता का प्रदर्शन किया।

मदुरै, तंजावुर, सेंजी तथा इक्केरी के अभिलेखों तथा साहित्य ग्रंथों में उपलब्ध वंशावलियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन विशेष *नायक* वंशों के पूर्वजों को सोलहवीं शताब्दी में चिह्नित किया जा सकता है, जब उन्हें कृष्णदेवराय तथा अच्युतदेवराय के काल में *नायक* अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया था। मिसाल के लिए, सेंजी तथा इक्केरी (उत्तरी कर्नाटक) के *नायक* राज्यों का उदय सोलहवीं शताब्दी में कृष्णदेवराय के काल में हुआ था। *तंजौर* तथा *मदुरै* के *नायक* राज्यों का विकास अच्युतदेवराय के काल में हुआ। सेवप्पा *नायक* के अधीन तंजावुर (आधुनिक तंजौर तथा उत्तरी आर्कोट) का उदय अच्युतदेवराय के काल में 1532 सी ई में हुआ था। ऐतिहासिक इतिवृत्तकार हमें यह जानकारी देते हैं कि ये तीन *नायक* वे तीन सैन्य अधिकारी थे जिन्हें कृष्णदेवराय ने तमिल क्षेत्र को संभालने हेतु नियुक्त किया था।

7.4.2 मदुरै, तंजौर तथा सेंजीः उद्‌भव

यद्यपि मदुरै, तंजावुर और सेंजी के *नायकों* का मूल अस्पष्ट है, तथापि स्रोतों से कुछ जानकारी पाना संभव है। नगमा नायक और उसका पुत्र विश्वनाथ नायक मदुरै *नायक*-राज्य के संस्थापक थे (राव तथा अन्य 1992: 44-56)। मदुरै के *नायकों* के उदय को इतिवृत्तांतों में भली-भाँति दर्ज किया गया है। यह इतिवृत्त मदुरै के *नायकों* के सैन्य कौशल के गौरव को प्रदर्शित करते हैं, विशेषकर विश्वनाथ के, और उनकी इस क्षेत्र के स्वायत्त सरदारों से समझौता करने की योग्यता की। विश्वनाथ को दुर्गों, मंदिरों, सिंचाई की नहरों के निर्माण और ब्राह्मण बस्तियों की स्थापना तथा मदुरै के आस-पास मछवारों के समुदाय (***पारवा***) के बीच कार्यरत जेसुइटों के साथ संवाद करने के लिए जाना जाता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि मदुरै के *नायकों* ने अपनी राजव्यवस्था को काकतीय आदर्श पर आधारित किया था जो योद्धाओं के प्रभुत्व वाली आक्रामकता लिए हुए थी (अय्यर 1924: 1-47; राव तथा अन्य 1992: 39-40, 41)। किंतु उन्होंने साथ ही विजयनगर के अधिस्वामियों के प्रति दृढ़ निष्ठा का दावा भी किया। वस्तुतः, इतिवृत्तकार हमें यह बताते हैं कि कृष्णदेवराय उनकी निष्ठा से इतना प्रभावित था कि उसने दुर्गा की एकमात्र मूर्ति को भी उन्हें दे दिया जो विजयनगर साम्राज्य की शक्ति और संरक्षण की प्रतीक थी।

तंजावुर पर रचित इतिवृत्त इस क्षेत्र के इतिहास को दर्ज करते हुए, विशेषकर अठारहवीं शताब्दी में, शिवप्पा की भूमिका के विषय पर चर्चा करते हैं, जिनके पिता थिमप्पा नायक तमिलनाडु के आर्कोट क्षेत्र में *नायक्कट्टन* के धारक थे। शिवप्पा की पत्नी अच्युतराय की पत्नी की बहन थीं और इस वैवाहिक संबंध के माध्यम से उसे तंजावुर प्राप्त हुआ था। वह सम्भवतः विजयनगर के शासक की निजी सेवा में संलग्न था। तंजावुर के *नायकों* ने अपनी राजव्यवस्था को ब्राह्मण सिद्धांतों पर आधारित किया था, और ब्राह्मण *गुरु* तथा *आचार्य* उनकी सेवा में थे, जिनमें सबसे विख्यात गोविंद दीक्षित थे (वृद्धगिरीसन 2011: 1-23, 113-24; राव तथा अन्य 1992: 41)।

ऐतिहासिक आख्यानों में सेंजी के *नायकों* के वंश का संस्थापक तुबाकी कृष्णप्पा नायक था। उनके बारे में कई कथानक हैं कि किस प्रकार उन्होंने सेंजी की पहाड़ियों पर चमत्कारिक ढंग से एक किले का निर्माण करवाया था (श्रीनिवासाचारी 1943: 1-26)। कहा जाता है कि यह निर्माण विष्णु के एक अवतार वराह की कृपा से संभव हुआ था, जिसने *नायक* का कांचीपुरम् से सेंजी की ओर मार्ग प्रशस्त किया था। कुछ दस्तावेजों में कृष्णप्पा नायक का वर्णन विजयनगर साम्राज्य से पूर्व के समय से संबंध रखने वाले एक गड़रिया-परिवार से बताया गया है। इस प्रकार सेंजी राज्य के *नायकों* के उद्‌भव की कथा 'एक दुर्ग तथा एक राज्य' पर आधारित है, 'जिसका सृजन नए क्षेत्रों की विजय से नहीं बल्कि प्रभावपूर्ण संसाधनों की उपलब्धता, चमत्कारी ढंग से प्राप्ता तथा उनके निरंतर पुनर्सृजन से हुआ था...' (राव तथा अन्य 1992: 41-2)। ऐतिहासिक रूप से सेंजी के *नायक* स्वयं को सोलहवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में कोंडम्मा *नायक* (1578-94 सी ई) के नेतृत्व में और उसके बाद मुट्टू कृष्णप्पा के अधीन किए गए लंबे संघर्ष के बाद ही स्थापित कर सके थे। *नायकों* ने इसके बाद उस दुर्ग की मरम्मत करवाई

जो पहले से मौजूद था और इसके चारों ओर एक नगरीय केंद्र का विकास हुआ। लेकिन, मान्य वंशावली परंपरा के अभाव में, जैसा कि मदुरै तथा तंजावुर के *नायकों* के संबंध में उपलब्ध है, कई स्वायत्त सरदारों तथा *नायकों* ने सेंजी के *नायकों* के प्राधिकार को चुनौती दी। इन *नायकों* तथा चंद्रगिरी से शासन करने वाले अराविडु वंश के विजयनगर के *राय* का दबाव सत्रहवीं शताब्दी में अंततः सेंजी के *नायकों* के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ (श्रीनिवासाचारी 1943: 27-64; राव तथा अन्य 1992: 42-4)।

7.4.3 *नायक* राज्य निर्माण के आधार

नायक राज्यों की उत्पत्ति तथा उनका सुदृढ़ीकरण छः मुख्य घटकों पर आधारित था, जो इससे पूर्व के काल से मूल रूप से भिन्नता प्रदर्शित करते थे। इनमें *प्रथम* तरल पूंजी अर्थात नकद धन पर अधिकार था जो भूमि आधारित संपत्ति से अधिक महत्वपूर्ण हो चुकी थी। वस्तुतः, स्रोत हमें यह बताते हैं कि मदुरै के नगमा नायक ने अपने राजा होने के अधिकार का दावा स्वयं के पास धन की विशाल राशि होने के आधार पर किया था। *दूसरा*, राज्य की उत्पत्ति में भाड़े के सैनिकों की महत्वपूर्ण भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है, वह गतिशील थे, भूमि से आबद्ध नहीं थे, और शस्त्रों तथा अच्छे घोड़ों, जो बिना किसी तैयारी के उन्हें तीव्र संचलन की सुविधा उपलब्ध कराते थे, से सुसज्जित थे। *तीसरा*, एक ऐसे क्षेत्र की उपलब्धता जहाँ ये गतिशील योद्धा-अभिजात्य स्वयं को आबाद कर सकते थे तथा अपनी शक्ति को सुदृढ़ीकृत कर सकते थे। *चौथा*, विजयनगर के राजा के प्रति निष्ठा भी महत्वपूर्ण थी, यद्यपि वह कमजोर हो चुका था, तथापि इन नए स्थापित राज्यों को मान्यता प्रदान करता था। *पाँचवां*, शक्ति का सुदृढ़ीकरण दैवीय अनुकंपा या स्वीकृति पर आधारित होना चाहिए था और दैवीय शक्ति के प्रति पूर्ण समर्पण का प्रदर्शन अत्यंत महत्वपूर्ण था। उदाहरण के लिए, देवी मीनाक्षी मदुरै के *नायकों* की संरक्षिका देवी थी। *छठा*, क्षत्रिय वंश-रेखा से जोड़ने हेतु वंशावलियों के निर्माण करने और मंत्रियों तथा सलाहकारों के रूप में कार्य करने हेतु ब्राह्मणों की भूमिका इनके लिए अब प्रासंगिक नहीं रह गई थी। *नायक* अपनी स्वतंत्रता का दावा स्वयं कर सकते थे, यदि उनके पास संपत्ति हो, गतिशीलता हो, और वे शस्त्रों से सुसज्जित हों, उनका क्षेत्र विशेष पर नियंत्रण हो और साथ ही उन्हें विजयनगर के राजाओं की तथा दैवीय मान्यता प्राप्त हो (राव तथा अन्य 1992: 54-6)।

राज्य निर्माण और शक्ति के सुदृढीकरण हेतु इन छः आवश्यकताओं ने राजत्व की विचारधारा को भी प्रभावित किया, जिसकी चर्चा नीचे की जा रही है।

7.5 *नायकों* के विजयनगर शासकों के साथ संबंध

नायकों और विजयनगर के शासकों के बीच संबंध निष्ठा के प्रदर्शन से विद्रोह में रूपांतरित हुए। समय-समय पर *नायक* शासकों द्वारा विजयनगर के शासकों की सहायता आपस में एक दूसरे को दबाने के लिए प्राप्त की जाती थी। उदाहरण के लिए, सेंजी के *नायक* विजयनगर के शासकों के प्रति 1592 सी ई तक निष्ठावान रहे थे। इसी प्रकार तंजौर के *नायक* सोलहवीं शताब्दी के दौरान विजयनगर के शासकों के प्रति निष्ठावान रहे और उन्होंने विजयनगर के राजा वेंकटपतिदेव को गोलकुंडा की सल्तनत के आक्रमण के विरुद्ध समर्थन प्रदान किया था। मदुरै के *नायक* विश्वप्पा तथा उसके उत्तराधिकारी भी विजयनगर के शासकों के प्रति निष्ठावान रहे थे तथा उन्होंने विजयनगर के राय की सहायता पुर्तगालियों के विरुद्ध की थी। इसी प्रकार, इक्केरी के *नायक* भी विजयनगर के शासकों के प्रति निष्ठावान रहे थे, इक्केरी के सदाशिव *नायक* (1540-65 सी ई) ने बीजापुर के सुल्तान को हराने में राम राय की सहायता की थी जिसके बाद राम राय ने उसे *राय* की उपाधि से नवाज़ा था।

कृष्णदेवराय तथा अच्युतदेवराय, दोनों ही अक्सर *नायकों* को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करते रहते थे, किंतु *नायकों* ने, विशेषकर इन चार राजव्यवस्थाओं के *नायकों* ने स्थानांतरण से स्वयं को बचाए रखा, और अपने क्षेत्रों पर जमे रहे और 1565 सी ई के बाद स्वयं की स्थिति को मज़बूत किया। लेकिन, विजयनगर की सत्ता की अवहेलना करने के बावजूद वह विजयनगर के शासन के प्रति निष्ठा का दावा करते रहे और वह स्वयं को अपने क्षेत्रों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी मानते थे (काराशिमा 2014: 227)।

1592 सी ई के बाद विजयनगर के राजा वेंकटपति प्रथम ने *नायकों* पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए अपनी राजधानी को पेनुकोंडा से चंद्रगिरी में स्थानांतरित किया। इसने *नायकों* के बीच रोष पैदा

किया, जो अक्सर विजयनगर राज्य को भेंट देने में आनाकानी करते थे। वास्तव में, जब भी विजयनगर के शासक प्रशासन को केंद्रीकृत करने के लिए अपनी शक्ति में वृद्धि करते थे, तब *नायक* शासक की सत्ता को चुनौती देते हुए इसका प्रतिकार करते थे। उदाहरण के लिए, 1580 के दशक के बाद मदुरै के *नायकों* ने विजयनगर के शासकों के विरुद्ध विद्रोह किया और उन्हें करों के भुगतान से इंकार कर दिया। वेंकटपति प्रथम को मदुरै के *नायकों* को दबाने के लिए अपनी सेना को भेजना पड़ा ताकि राजस्व की वसूली की जा सके।

अक्सर विजयनगर के शासक एक *नायक* को दूसरे *नायक* के विरुद्ध भड़काते थे ताकि विजयनगर की सत्ता को चुनौती देने के लिए कोई शक्तिशाली विकल्प उठ खड़ा न हो। उदाहरण के लिए, वेंकटपति ने वेल्लोर के *नायकों* को अपने सामंती अधिस्वामियों, सेंजी के *नायकों*, की सत्ता को चुनौती देने के लिए उकसाया तथा अंततः 1608 सी ई तक वेंकटपति ने सेंजी तथा वेल्लोर दोनों पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार इक्केरी के *नायकों*, जो सोलहवीं शताब्दी के दौरान विजयनगर के शासकों के प्रति निष्ठावान बने रहे थे, ने वेंकटप्पा *नायक* (1586-1629 सी ई) के नेतृत्व में सत्रहवीं शताब्दी में वेंकटपति प्रथम के शासनकाल में विद्रोह कर दिया था।

कुछ *नायक* राज्य विजयनगर के शासकों के नियंत्रण के लिए हमेशा मुश्किल बने रहे। ओडयार के स्वायत्त शासक जो विजयनगर के साम्राज्य की स्थापना से भी पूर्व तेरहवीं शताब्दी में मैसूर के क्षेत्र में बस गए थे, ने विजयनगर के शासकों के प्राधिकार को कभी भी स्वीकार नहीं किया। कृष्णदेवराय ने भी ओडयारों पर नियंत्रण प्राप्त करना मुश्किल पाया। ये चामराज तृतीय (1513-1553 सी ई) तथा उसका पुत्र शिवराज (1553-1572 सी ई) ही थे, जिनके नेतृत्व में ओडयार शक्तिशाली बन गए थे। 1610 सी ई तक ओडयार राजा ने अपनी स्वतंत्रता को स्थापित कर लिया था, जब उसने सफलतापूर्वक विजयनगर के राज-प्रतिनिधि को श्रीरंगपट्टनम से उखाड़ फेंका और इसको ओडयार *नायकों* के राज्य की राजधानी घोषित कर दिया।

1614 सी ई के बाद *नायकों* के राजनीतिक दृष्टिकोण में एक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। 1614 सी ई में विजयनगर के शासक वेंकट द्वितीय की मृत्यु बिना कोई उत्तराधिकारी छोड़े हो गई थी, इसके बाद सिंहासन पर उत्तराधिकार हेतु सिंहासन के दो दावेदार समूहों के बीच लंबा संघर्ष शुरू हुआ, इनमें से एक समूह को मदुरै तथा सेंजी के *नायकों* का समर्थन तो दूसरी ओर अन्य समूह को तंजावुर के *नायकों* का समर्थन प्राप्त था। इससे बहुत नुकसान हुआ और विजयनगर के शासक कमजोर पड़ गये तथा वास्तव में उनके हाथों में कोई भी शक्ति नहीं रह गई थी। यद्यपि 1640 के दशक में भी *नायक* राज्यों तथा विजयनगर के शासकों का संबंध स्वामी और सेवक का बना रहा, किंतु यह नाममात्र का ही था। 1642 सी ई में श्रीरंग द्वितीय विजयनगर के सिंहासन पर आसीन हुआ। मदुरै तथा सेंजी के *नायकों* ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और उसे कुछ समय के लिए तंजावुर के *नायक* राज्य में रहने के लिए जाना पड़ा। 1649 सी ई में बीजापुर ने तंजावुर पर आक्रमण कर दिया तथा श्रीरंग द्वितीय को ओडयारों के *नायक* के पास शरण मांगनी पड़ी तथा उसे स्वयं को मैसूर में स्थापित करना पड़ा। कुछ वर्षों बाद गोलकुंडा-बीजापुर के मध्य संघर्षों तथा दक्खनी सल्तनत में मुगलों के आक्रमण के कारण श्रीरंग द्वितीय कोरोमंडल के कर्नाटक क्षेत्र में घुस गया और उसने गोलकुंडा के सुल्तान से विजयनगर की राजधानी चंद्रगिरी को वापस पा लिया। सेंजी, तंजावुर तथा मदुरै के *नायकों* के साथ आपसी संघर्षों के कारण श्रीरंग द्वितीय को पुनः कर्नाटक में इक्केरी के शिवप्पा *नायक* के पास शरण माँगनी पड़ी जो प्रतीकात्मक रूप से उसे अपना अधिस्वामी मानता था।

7.6 *नायक* शासक तथा स्वायत्त सरदारः सुदृढ़ीकरण और प्रशासन

तमिल, कर्नाटक तथा तेलुगु क्षेत्रों में हमेशा से छोटे शक्तिशाली स्वायत्त सरदारों की उपस्थिति रही थी, जिनकी शक्ति का आधार स्थानीय मूल था, जिनका कृषि उत्पादन के बड़े हिस्से तथा व्यापार पर नियंत्रण था तथा उनका विशाल अधिक्षेत्रों, जिन्हें *पलैयम* कहा जाता था, पर अधिकार था। उनमें से कुछ के पास बड़ी सेनाएँ भी थीं। इन स्वायत्त सरदारों को तमिल में *पलैकरन*, कन्नड़ में *पलैगन*, तेलुगु में *पलैगा* तथा अंग्रेजी में *पॉलीगार* के रूप में जाना जाता था (काराशिमा 2014: 228)। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान *नायकों* ने इन स्वायत्त सरदारों को 'स्थानीय प्रशासन तथा वन क्षेत्रों और राजमार्गों

की सुरक्षा हेतु नियुक्त किया'। इनमें से अधिकांश *पॉलीगार* अपने विशिष्ट *नायक* अधिस्वामी के प्रति निष्ठावान होते थे और अन्य शासकों के आक्रमण के समय विशेष रूप से उनकी सहायता करते थे, यद्यपि, इनमें से कुछ स्वायत्त सरदार या *पॉलीगार* स्वयं की शक्ति को स्थापित करने तथा अपने *पलैयम* को एक स्वतंत्र अधिक्षेत्र के रूप में स्थापित करने में सक्षम थे। इस तरह का एक मुख्य उदाहरण रामनाथपुरम् के सेतुपतियों का है जो मारवा सरदार या *पॉलीगार* थे (डर्क्स 1987; काराशिमा 2014: 228)।

बोध प्रश्न-2

1) सोलहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक दक्षिण भारत में *नायक* राज्यों के उदय का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

2) *पॉलीगार* कौन थे और *नायक* राजव्यवस्था में उनकी क्या भूमिका थी?

.....

.....

.....

3) *नायक* राज्य निर्माण के तीन आधारों को संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

4) *नायक* राजव्यवस्थाओं तथा विजयनगर के शासकों के बीच सम्बन्धों पर संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

7.7 *नायक* राज्यों की युद्ध प्रौद्योगिकी

चूँकि यह काल *नायक* राज्यों, विजयनगर राज्य के अराविडु शासकों, छोटे अधीनस्थ *नायकों*, स्वायत्त सरदारों, बीजापुर तथा गोलकुंडा सल्तनतों के बीच संघर्ष का काल था, अतः इस काल में युद्ध प्रौद्योगिकियों के विकास को संरक्षण मिला और उस पर ध्यान दिया गया। इस क्षेत्र की भौगोलिक जानकारी तथा गतिशीलता के मुद्दे काफ़ी महत्वपूर्ण थे क्योंकि *नायक* योद्धा और मारवा, सेतुपति तथा कल्लार जैसे स्वायत्त सरदार छापामार युद्ध प्रणालियों में संलग्न रहते थे (राव तथा अन्य 1992: 238-9)। यह काल सुरक्षा और परिरक्षा के लिए दुर्गों और गढ़ियों के निर्माण के लिए जाना जाता है। सेंजी का क़िला विख्यात था और इसे व्यावहारिक रूप से अभेद्य माना जाता था।

नायक राजव्यवस्थाएँ आग्नेयशस्त्रों के प्रयोग से परिचित थीं तथा सशस्त्र संघर्षों के दौरान इनका उपयोग किया जाता था (राव तथा अन्य 1992: 220-41)। साहित्यिक स्रोत युद्धों, शिकार तथा रोमांचक कृत्यों के दौरान आग्नेयशस्त्रों और आग्नेयशस्त्र तकनीकों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं (राव तथा अन्य 1992: 224-26)। दिलचस्प है कि इनमें 'विभिन्न संदर्भों में आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग काव्यात्मक युक्तियों के रूप में प्रयोग किया गया है ...' (राव तथा अन्य 1992: 224)। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ *नायक* राज्यों के लिए आग्नेय अस्त्रों की मुख्य आपूर्तिकर्ता थीं। डच फैक्ट्रियों के दस्तावेज़ हमें स्थानीय स्वायत्त सरदारों द्वारा ऋण पर या बेचकर तोपों को प्रदान करने हेतु की गई प्रार्थनाओं की जानकारी देते हैं (राव तथा अन्य 1992: 230)।

लेकिन, कुछ इतिहासकारों का मानना है कि युद्ध के परिवेश तथा मज़बूत सैन्य परम्परा के अस्तित्व में होने के बावजूद भी आग्नेय अस्त्रों का बहुत प्रयोग नहीं किया जाता था। इसके बजाय उनके प्रयोग को कमतर माना जाता था और तलवारों और बरछे के प्रयोग को साहस की बेहतर परीक्षा करने वाला

समझा जाता था क्योंकि इनके प्रयोग द्वारा योद्धा का शत्रु के सम्मुख आमने-सामने लड़ना संभव था (राव तथा अन्य 1992: 235-36)। इस प्रकार, इस बात पर बल दिया गया है कि यद्यपि नवीन सैन्य नवाचारों को स्वीकारा गया तथा वे भली-भाँति आम जानकारी में थे, यह 'सैन्य क्रांति' का काल नहीं था क्योंकि *नायक* राज्यों ने अपनी युद्ध प्रणाली की अवसंरचना में इन नई तकनीकों को आसानी से खपाया नहीं था। इसके अतिरिक्त पैदल सेना के बजाय अश्वारोही सेना पर अधिक निर्भरता थी। इन्हीं कारणों से बीजापुर तथा गोलकुंडा की सेनाएँ आग्नेय अस्त्रों तथा सुसंगठित पैदल सेना के कुशल प्रयोग से *नायक* सेनाओं को कई युद्धों में मात दे सकती थीं (राव तथा अन्य 1992: 239-41)।

7.8 राजत्व, वैधानिकता तथा राजा की छवि

दक्षिण भारत की पुरानी राजव्यवस्थाएँ, उदाहरण के लिए, पल्लव, चोल तथा कुछ हद तक विजयनगर साम्राज्य अपने शासन के लिए वैधानिकता वैदिक अनुष्ठानों से प्राप्त करती थीं। *नायक* शासक वैदिक अनुष्ठानों के साथ ही विजयनगर की महान् शक्ति के प्राधिकार से भी वैधानिकता प्राप्त करते थे, अपनी निष्ठा तथा विजयनगर के शासकों के साथ राजनीतिक सम्बन्धों से जुड़े वंश-क्रम से संबंधित होने के आधार पर। इस प्रकार सेंजी, मदुरै, तंजावुर तथा मैसूर के *नायक* यह दावा करते थे कि वे विजयनगर के शासकों के निष्ठावान अधीनस्थ हैं तथा विजयनगर के शासकों ने अतीत में उन्हें विशेष अनुग्रह और पद प्रदान किए हैं। इस प्रकार के वंश-क्रम ने न केवल *नायक* शासकों को प्रतिष्ठा प्रदान की बल्कि एक ऐसे समय में जब दक्षिण भारत की राजनीति में सदा एक-दूसरे से युद्ध तथा प्रतिस्पर्धा में संलग्न छोटे-छोटे राज्यों का प्रभुत्व था, इन *नायक* शासकों को एक प्रकार की नैतिक तथा आनुष्ठानिक सत्ता प्रदान कर इनकी स्थिति को मज़बूत बनाया।

नायक काल के लिखित स्रोतों में यह भली-भांति दर्ज है। *रायवाचकमु* को उद्धृत करते हुए वैगनर यह कहते हैं कि *नायक* राज्य ने सामान्यतः, तथा मदुरै के *नायक* राज्य ने विशेष रूप से, शक्तिशाली होने के बावजूद 'कभी भी ''महान् राजाओं या सार्वभौमिक स्वामियों'' की उपाधि तथा स्थिति को धारण नहीं किया (डर्क्स 1987: 45), किंतु वे आश्रित-राजत्व के राजनीतिक स्वरूप के अनुसरण करने तथा विजयनगर के सिंहासन के प्रति अधीनस्थता के दावे और इस प्रकार एक प्रतिबिंबित गौरव के माध्यम से स्वयं की सत्ता को मजबूत करने से ही संतुष्ट थे' (वैगनर 1993: 10)। इस प्रकार *रायवाचकमु* में उल्लिखित वैधानिकता की वे युक्तियाँ, जिन्होंने *नायक* राजत्व को सुदृढ़ विकृत किया, इस प्रकार हैं:

7.8.1 गौरवपूर्ण अतीत का गान

वैगनर के अनुसार, मदुरै के शासक विश्वनाथ *नायक* को एक ऐसे वंशावली ग्रंथ की रचना करना, जिसमें एक भव्य राजधानी से युक्त विजयनगर साम्राज्य तथा इसके शासक कृष्णदेवराय के गौरवशाली अतीत से अपने वंश क्रम को जोड़ा जा सके, उचित लगा। यह अनुभव किया गया कि इस प्रकार का संबंध मदुरै को वैधानिक उत्तराधिकारी राज्य होने के गौरव से प्रतिष्ठित करेगा। चूँकि समकालीन विजयनगर राज्य का अराविडु वंश, जो *नायक* राज्यों के साथ सह-अस्तित्व में था, गौरवशाली अतीत की छाया मात्र रह गया था और विजयनगर का राजा वेंकटपति एक धूमिल पड़ चुकी राजतंत्रीय शक्ति का प्रतिनिधित्व करता था, इस प्रकार के राज्य से स्वयं की पहचान को जोड़ने से मदुरै के गौरव में कमी आती (वैगनर 1993: 10-11, 23-33)।

7.8.2 प्राधिकार के स्रोत के रूप में राजधानी नगर

रायवाचकमु के अनुसार विजयनगर या विजय की नगरी एक गौरवशाली राजधानी और सत्ता के प्राधिकार का महत्वपूर्ण स्रोत थी। इस नगर को समर्पित एक पृथक अध्याय में, यह ग्रंथ हमें यह जानकारी देता है कि इस नगर की स्थापना कृष्णदेवराय के शासनकाल से 300 वर्ष पूर्व दैवीय शक्ति के माध्यम से हुई थी, अतः अभिप्राय यह था कि कृष्णदेवराय समेत, व्यक्ति के रूप में शासक केवल द्वितीयक थे तथा उनका व्यक्तित्व इस 'नगर पर भौतिक अधिकार' से व्युत्पन्न था जो प्रत्येक शासक के लिए वैधानिकता तथा सत्ता की एकमात्र स्रोत थी। 1565 सी ई में तालीकोटा के युद्ध के बाद इस नगर के विनाश का तात्पर्य आनुष्ठानिक शक्ति तथा सत्ता के स्रोत का लोप होना तथा 'वैधानिक वंशीय प्राधिकार का विनाश भी था'। चूँकि सत्रहवीं शताब्दी में विजयनगर राज्य विजयनगर के शहर का कोई विकल्प नहीं ढूंढ पाया था, इतनी निम्नतर

स्थिति वाले शासक के साथ, इस प्रकार, इसने वैधानिक सत्ता भी गंवा दी थी (वैगनर 1993: 11-12, 33-50)।

7.8.3 शत्रु का प्रतिचित्रण

चूँकि विजयनगर साम्राज्य के राजधानी नगर की विध्वंसक दक्खनी सल्तनतें थीं, जिनके शासक मुस्लिम थे, *रायवाचकमु* में उनको विशेष रूप से आलोचनातमक तरीक़े से प्रस्तुत किया गया है, जो एक बिल्कुल ही अलग संस्कृति से संबंध रखते थे और विजयनगर के शासकों के धार्मिक राजत्व के विपरीत थे। उनको 'कलियुग के दैत्यों' के रूप में चित्रित करते हुए, यह ग्रंथ उनके सामाजिक व्यवहार तथा सांस्कृतिक संवेदनाओं की निंदा करता है। यह एक सशक्त शत्रु का चित्रण भी पेश करता है, जिसका सामना करना सैन्य गौरव का विषय था (वैगनर 1993: 12, 50-63)। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि सत्रहवीं शताब्दी की तेलुगु कविता में, एक ख़तरे के रूप में मुस्लिम-उपस्थिति प्रचलित विषय रहा था और यह साहित्यिक परंपरा का अंग बन गया था (राव तथा अन्य 1992: 7)।

इस प्रकार *नायक* राजत्व की प्रकृति विजयनगर के शासन पर निर्भरता और उससे स्वतंत्रता के बीच संतुलन की थी। सोलहवीं शताब्दी में स्वतंत्र हो जाने और विजयनगर के शासक को किसी भी प्रकार की भेंट न देने के बावजूद भी *नायक*-राजनीति स्वयं के लिए वैधानिकता एक दूरस्थ गौरवशाली अतीत और एक भव्य शहर, 'जो उस पर अधिकार रखने वाले को अपराजेय शक्ति से विभूषित करने वाले एक ताबीज़ की तरह था', में खोजती थी (वैगनर 1993: 11)। वास्तव में, निष्ठावान सामंतीय अधीनस्थ के दर्ज़े, जो अपने शक्तिशाली विजयनगर के अधिस्वामियों के प्रति समर्पण रखता था, ने *नायक*-राज्यों को वैधानिक गौरव प्रदान किया, जिसने उन्हें शक्तिशाली स्वायत्त सरदारों तथा पॉलीगारों, जो राजनीतिक पदानुक्रम में नीचे स्थित थे, के ऊपर अपनी सत्ता का प्रयोग करने में सहायता की। इस प्रकार संप्रभुता का दावा हमेशा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता रहा।

नायक राजत्व की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसे अपने क्षत्रिय वंश क्रम की मान्यता हेतु ब्राह्मणीय समर्थन की आवश्यकता नहीं रह गई थी। यद्यपि, वैदिक तथा पौराणिक विचारों तथा इससे संबंधित राजनीतिक विचारधारा को स्वीकारा गया किंतु वह राजत्व के विकास पर कम ही प्रभाव रखते थे। *नायक* राजाओं की ग़ैर-ब्राह्मण शूद्र पृष्ठभूमि को छुपाने के लिए अब संस्कृतिकरण की रूपरेखा आवश्यक नहीं रह गई थी तथा इस पृष्ठभूमि को समान रूप से सम्मानित वंश-क्रम के रूप में प्रस्तुत किया गया था। राजत्व का यह नया मॉडल अब धार्मिक विचारधारा पर आधारित नहीं रह गया था, जो राजा को परंपरागत वंश-पदानुक्रम के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत करती थी (राव तथा अन्य. 1992: 79; 57-82)।

राजत्व तथा राजा की छवि के साथ *'भोग'* का विचार जोड़ा जाने लगा। इसका अभिप्राय यह था कि राजा की मंदिरों तथा ब्राह्मणों को भूमि दान करने वाले के रूप में भूमिका अब उतनी महत्वपूर्ण नहीं रह गई थी, जैसा कि यह पूर्व के शासनकाल में थी। इसके बजाय राजत्व का तात्पर्य भोजन तथा राज्य के लोगों के बीच भोजन के वितरण पर भव्य राजकीय व्यय से प्रकट होता था। इस प्रकार अब अन्न-दान की आनुष्ठानिक भूमिका ने राजा की विनम्र छवि को गढ़ा, न कि भूमि दान ने। *भोग* का विचार भव्य जीवन शैली, आलंकारिक दरबारी जीवन, नृत्य, संगीत, साहित्य तथा ऐंद्रिक आनंद का पक्ष लेता था। राजा के व्यक्तित्व में इन गुणों को झलकना चाहिए और योद्धा होने के साथ-साथ उससे बुद्धिमानी, विनोद तथा परिष्कृत व्यवहार धारण करने की आशा की जाती थी। हालांकि, राजा ने ब्राह्मणों तथा मंदिरों को भूमि तथा अन्य उपहार प्रदान करना जारी रखा, लेकिन अब प्रवाहपूर्ण संसाधनों (द्रव्य) का दान अधिक महत्वपूर्ण हो गया था (राव तथा अन्य 1992: 61-72)।

बोध प्रश्न-3

1) *नायक* राज्यों को सोलहवीं शताब्दी के विजयनगर राज्य से वैधता पाने की आवश्यकता क्यों थी?

.....

.....

.....

2) *रायवाचकमु* में चित्रित राजनीतिक वैधता की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में से कौन से कथन ग़लत हैं?

क) *रायवाचकमु* एक तेलुगु ग्रंथ है।

ख) विजयनगर राज्य के गौरवशाली अतीत का उपयोग *नायकों* द्वारा अपने राजत्व को वैधानिकता प्रदान करने के लिए किया गया।

ग) *नायक* काल एक गौरवशाली सैन्य क्रांति का साक्षी रहा है।

घ) दक्खन के मुस्लिम शासकों की विजयनगर के राजधानी शहर पर आक्रमण के लिए निंदा की गई है।

4) *भोग* के विचार का तात्पर्य है:

क) भूमि अब महत्वपूर्ण नहीं रही थी

ख) भूमि महत्वपूर्ण थी

ग) भूमि प्रांसंगिक नहीं रह गई थी

घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

7.9 *नायक* राज्यों की राजनीतिक अर्थव्यवस्था

राजत्व की नई राजनीतिक विचारधारा तथा राजा की आदर्श छवि पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद अर्थव्यवस्था के बदलते संदर्भ में निहित थी। एक प्रकार का वाणिज्यवाद विकसित हुआ तथा *नायक* शासकों ने सामुद्रिक व्यापार में दिलचस्पी दिखाई और आयात शुल्कों के संग्रह हेतु एक प्रभावी पद्धति का विकास किया। यह वह काल था, जब दक्षिण भारत के विश्व अर्थव्यवस्था के साथ फलते-फूलते व्यापारिक संबंध थे तथा नई फसलों और विनिर्मित वाणिज्यिक-वस्तुओं का उत्पादन किया जा रहा था (राव तथा अन्य 1992: 107-11)। व्यापार को इसलिए भी बढ़ावा दिया जाता था क्योंकि यह हिंद महासागर के आर-पार तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ कूटनीतिक संबंधों को भी प्रोत्साहित करता था। कई वस्तुओं का आयात तथा निर्यात किया जाता था, विशेषकर कीमती धातुओं, युद्ध में प्रयोग हेतु घोड़े तथा हाथियों का। *नायकों,* विशेषकर मदुरै के *नायकों,* ने मोती उत्पादन में रुचि दिखाई तथा इस हेतु अपने प्रतिनिधियों को जिम्मेदारी सौंपी। उन्होंने पुर्तगाली तथा डच लोगों के साथ भी संवाद स्थापित किया, जो मोती उत्पादन में संलग्न थे। *नायकों* ने मोतियों के खुदरा व्यापार को नियंत्रित किया तथा इससे बड़ी भारी मात्रा में करों को एकत्र किया था (राव तथा अन्य 1992: 111)। इस प्रकार भारी मात्रा में धन और सोने का प्रवाह हो रहा था तथा व्यापार से होने वाली यह आय उतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी कि कृषि क्षेत्र से होने वाली आय थी। अभिजात्य वर्ग का जहाज़ों पर स्वामित्व था तथा कई व्यापारिक परिवारों जैसे बालिजा का संबंध बर्मा, मलय-प्रायद्वीप तथा श्रीलंका के साथ था (राव तथा अन्य 1992: 108-09)।

नायक राज्यों ने कई शहरी केंद्रों का विकास किया। वह नगरीय क्षेत्र जो *नायक* शासन से पहले से ही मौजूद थे, भी रूपांतरण से गुजरे तथा उन्होंने नवीन लोकाचारों को अपनाया। यह नगरीय केंद्र संसाधनों के प्रवाह तथा पुनर्वितरण के केंद्र बन गए और वहाँ रहने वाली जनसंख्या, विशेषकर योद्धा, शिल्पकार, विशेषज्ञ-कृषक तथा व्यापारियों के लिए विलासितापूर्ण उपभोग को बढ़ावा देते थे। विदेशी यात्रियों के वृत्तांत वेल्लूर, मदुरै, तिरुचिरापल्ली, सेंजी, तंजावुर, ओडयार तथा इक्केरी के फलते-फूलते दरबारी कस्बों का विस्तृत विवरण प्रदान करते हैं। दुर्गीकृत नगरीय बसावटों से युक्त इन *नायक*-कस्बों, जिन्हें *पलैयम* के नाम से जाना जाता था, का सैन्य चरित्र विकसित हुआ और विदेशी व्यापारियों, जेसुइटों, यूरोपीय कंपनियों तथा अन्य के वृत्तांतों में इनका बहुरंगी विवरण उपलब्ध होता है। इन कस्बों

में बड़े स्तर पर मंदिरों का निर्माण भी हुआ। ये वृत्तांत नगरीय जीवन शैली की सैन्य प्रकृति को दर्शाते हैं, जिसमें प्रभावी नगरीय जनसंख्या योद्धाओं, अश्वारोही सैनिकों तथा सिपाहियों से मिलकर बनी थी जो *नायक* दरबारों में आते-जाते रहते थे। बाजार आधारित कस्बे, *पेट्टाई* भी बड़ी संख्या में इस काल के दौरान उभरे, जिनमें समय-समय पर बाजार लगाए जाते थे तथा इनमें से कुछ धीरे-धीरे *पलैयम* के रूप में भी विकसित हुए (राव तथा अन्य 1992: 82-92)।

नायक-राज्यों में राजकोषीय संसाधन कृषि भूमि तथा इससे होने वाली आय पर विभिन्न प्रकार के जटिल भूमि संबंधी अधिकारों पर आधारित थे (राव तथा अन्य 1992)। यह अधिकार व्यक्तियों, निगमों, मंदिरों तथा मठ आधारित संगठनों द्वारा धारण किए जाते थे और अक्सर इनसे राज्य द्वारा वैधता पाने की आशा की जाती थी जो बदले में करों से छूट प्रदान करता था। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण अधिकार *कनी* अर्थात संपत्ति धारण करने का अधिकार था, विशेषकर कृषि भूमि तथा उसके उत्पाद के रूप में। अन्य अधिकार यथा *अमरम्-नायक्कट्टनम्* तथा *पलैयम* थे, जो योद्धा समूहों के अधिकार थे तथा भूमि से होने वाले उत्पादन के ऊपर उनको राजकोषीय अधिकार प्रदान करते थे। राज्य शक्तिशाली अधिकारियों जैसे *दलवई, रायसम* तथा *प्रधानी* से मिलकर बनने वाले व्यापक प्रशासनिक तंत्र के माध्यम से इन अधिकारों को नियंत्रित करता था। चूँकि यह अधिकार प्रतिस्पर्धात्मक थे तथा इनको लेकर होने वाले संघर्ष आम थे, *नायक* राज्यों को राजकोषीय संसाधनों के स्थानांतरण में भिन्नता थी तथा *नायक* शासकों को करों के संग्रह हेतु विभिन्न प्रकार की रणनीतियाँ अपनानी पड़ती थीं। उदाहरण के लिए, मदुरै के *नायक* अपने अधिकार क्षेत्र के दक्षिणी हिस्सों में बारंबार भ्रमण करते थे ताकि राजकोषीय संसाधनों का संग्रहण सहजता से किया जा सके। अपने क्षेत्र के कुछ हिस्सों में *नायक* सीधे नियंत्रण रखते थे और कर संग्रह हेतु प्रशासनिक तंत्र का इस्तेमाल करते थे।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक एक नई राजकोषीय वाणिज्यिक व्यवस्था विकसित हुई, जिसे *इज़ारा* के रूप में जाना जाता है। साक्ष्य हमें यह बताते हैं कि राजस्व का ठेके पर संग्रह करने वाले विभिन्न सामाजिक समूहों से आते थे, जिनमें ब्राह्मण, वेल्लाल, चेट्टी तथा प्रवासी तेलुगु योद्धा शामिल थे, यह *इज़ारेदार* न केवल करों का संग्रह करते थे बल्कि व्यापार, शिल्प-संबंधी तथा अन्य ग़ैर-कृषि उत्पादों पर शुल्कों का संग्रह भी करते थे। अतः उनके पास अच्छा वाणिज्यक ज्ञान होना आवश्यक था ताकि 'किसी क्षेत्र की राजस्व संभावनाओं का वे सही-सही आकलन कर सकें'। राव, शुलमैन तथा सुब्रह्मण्यम के अनुसार राज्य *इज़ारेदारी* को प्रोत्साहित करता था क्योंकि उनके पास किसी क्षेत्र की राजस्व संभावनाओं का आकलन करने हेतु श्रेष्ठ सूचना-तंत्र होता था। इसके अतिरिक्त वे कम संग्रह होने का जोखिम भी उठाते थे, जबकि राज्यों को उन्हें नियत हिस्सा देना ही होता था। इस प्रकार वे राज्य की राजकोषीय स्थिरता को भी सुनिश्चित करते थे (राव तथा अन्य 1992: 1054-05)। लेकिन हमेशा इस बात का ख़तरा बना रहता था कि अपनी स्वयं की सेना रखने वाले यह *इज़ारेदार* कहीं स्वयं शक्तिशाली ना बन जाएँ और अंततः राजस्व का भुगतान रोक दें, जिससे राज्य को राजकोषीय घाटा हो सकता था।

7.10 सांस्कृतिक विकास

नायक शासन को कलात्मक और सांस्कृतिक उपलब्धियों तथा मंदिर वास्तुकला की एक विशिष्ट शैली के सृजन के लिए भी जाना जाता है। कई प्रकार से यह विजयनगर साम्राज्य की वास्तुकला का विस्तार था (काराशिमा 2014: 221)। *नायक* शासकों ने पहले से ही अस्तित्व में रहे मंदिरों की संरचनाओं में प्रायः और अधिक जोड़ा। स्थापत्य की प्रमुख विशेषता गर्भगृह के दूसरी ओर भव्य स्तंभयुक्त सभा भवन (मंडप) था। इन स्तंभों की संख्या सैकड़ों से लेकर हजारों तक होती थी। मंदिर के चारों ओर कई मंजिलों वाले तथा सुडौल आकृति वाले ऊँचे द्वारों (*गोपुरम्*) का निर्माण किया गया। इन मंदिरों के इन *गोपुरमों* के ग्रेनाइट से निर्मित आधार को और विस्तृत ढाँचों में बदला गया (काराशिमा 2014: 221)। मदुरै के *नायकों* ने तमिलनाडु में सबसे ऊँचे द्वार (*गोपुरम्*) का निर्माण करवाया। यह *गोपुरम्* मदुरै के निकट श्रीविलिपुट्टूर में स्थित है।

मंडपों तथा *गोपुरमों* सहित इन मंदिरों के ढाँचों में आलंकारिक मूर्तियों को उकेरा जाता था जिससे इसे एक भारी-भरकम और समृद्ध स्वरूप मिलता था। इनकी सतह पर चित्रित गच्चीकारी वाली मूर्तियाँ होती थीं तथा मंदिर के चारों ओर लंबे गलियारे निर्मित थे। *नायक* काल के स्तंभों पर उकेरी गईं कुछ अलंकृत मूर्तियों तथा स्थापत्य को मदुरै के मीनाक्षी मंदिर में देखा जा सकता है, इसका अधिकांश

हिस्सा सत्रहवीं शताब्दी में तिरुमला *नायक* (1623-59 सी ई) के काल में निर्मित हुआ था। दीवारों में उकेरी गई ये मूर्तियाँ सामान्यतः देवताओं, जनजातीय *नायकों*, लोक देवताओं तथा *नायक* शासकों और उनकी रानियों की आदमकद प्रतिमाओं के रूप में होती थीं (काराशिमा 2014: 221)। मदुरै में मीनाक्षी मंदिर के अलावा *नायक* काल की आलंकारिक मूर्तियों से युक्त स्थापत्य वेल्लोर के जलगंडेश्वर मंदिर, इक्केरी के अघोरेश्वर मंदिर, केलाड़ी तथा अहोबिलम के रामेश्वर तथा वीरभद्र मंदिरों तथा आंध्र क्षेत्र के सोमपालेम मंदिरों में देखा जा सकता है (कारशिमा 2014: 221)।

नायक काल की नई विशेषताओं में से एक अनन्य महलों तथा दुर्गों का निर्माण था। तमिलनाडु में सेंजी का दुर्ग परिसर तीन पहाड़ियों पर सेंजी के *नायकों* द्वारा निर्मित महलों और मंदिरों की संरचनाओं के रूप में विस्तृत है। इस दुर्ग की प्रतिष्ठा एक मजबूत ढाँचे के रूप में थी, जिसे कभी भी नष्ट नहीं किया जा सका और जिसकी वास्तुकलात्मक रूपरेखा ने इसे दुर्भेद्य बना दिया था। इस दुर्ग के स्थान का विकास नौवीं शताब्दी में चोलों के काल में शुरू हुआ था तथा धीरे-धीरे विभिन्न कालखंडों में विभिन्न शासक वंशों तथा शक्तिशाली अधिस्वामियों ने इसमें अन्य संरचनाओं को जोड़ा। लेकिन, सेंजी के *नायकों* ने इस दुर्ग के विकास और निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। इस दुर्ग की एक मजबूत परकोटे के रूप में उपयोगिता इससे साबित होती है कि अलग-अलग समय पर मराठों, बीजापुर के सुल्तान, मुग़लों, कर्नाटक के नवाबों, फ्रांसीसियों, हैदर अली तथा अंततः ब्रिटिशों ने इस पर अपना कब्ज़ा बनाए रखा। *नायकों* का नागरिक स्थापत्य द्रविड़ तथा इस्लामी शैलियों का मिश्रण था, जैसा कि 1636 सी ई में मदुरई के *नायक* वंश के राजा तिरुमलाई *नायक* द्वारा निर्मित महल में देखने को मिलता है।

नायक काल में चित्रकला तथा कला को भी संरक्षण मिला और इसका विकास हुआ। उदाहरण के लिए, शास्त्रीय चित्रकला की एक दक्षिण भारतीय शैली तंजावुर चित्रकला का *नायकों* के अधीन विकास हुआ। ये चित्र सामान्यतः चमकीले रंगों और सुनहरी पट्टिकाओं, काँच के छोटे मनकों तथा टुकड़ों और बहुमूल्य तथा अर्ध-बहुमूल्य रत्नों को चित्रों में अंतःस्थापित कर बनाए जाते थे। इन चित्रों की विषयवस्तु सामान्यतः भक्तिपूर्ण होती थी, जिसके विषय अधिकतर देवी-देवता, संत तथा विभिन्न धार्मिक ग्रंथों से लिए गए कथानक होते थे। इस पर दक्खनी तथा विजयनगर के कला स्वरूपों का भी प्रभाव था तथा बाद के काल में मराठा और यूरोपीय कंपनियों का प्रभाव भी तंजावुर या तंजौर चित्रकला पर पड़ा।

नायकों के दरबार साहित्यिक तथा प्रदर्शन कलाओं के विकास के केंद्र के रूप में भी उभरे। *नायक* साहित्यिक परंपरा की एक अनूठी विशेषता यह थी कि इसे कई भाषाओं में अभिव्यक्त किया जाता था। इस बहुभाषिकता ने दरबारी नृत्य, संगीत और नाटकों के प्रदर्शन पर भी प्रभाव डाला। बहुभाषिकता की संस्कृति पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के कारण थी (पीटरसन 2011: 285-301)। एक समृद्ध संस्कृतनिष्ठ तथा तेलुगु, तमिल तथा कन्नड़ क्षेत्रीय भाषायी परंपराओं का विकास विजयनगर शासन के अधीन ही हो चुका था तथा *नायक* राज्यों में इसका विकास जारी रहा, विशेषकर तेलुगु योद्धा समुदायों के आप्रवासन के साथ। इसके अतिरिक्त दक्खनी सुल्तानों, मुग़लों, व्यापारिक समुदायों, *पलैक्करारों*, ब्रिटिश, फ्रांसीसी तथा अन्य यूरोपीय कंपनियों की उपस्थिति ने एक सार्वदेशिक परिवेश के विकास में योगदान दिया जिसने *नायक* राज्यों की साहित्य तथा कला को प्रभावित किया था।

7.11 नवीन लोकाचार

इतिहासकार सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी के मध्य के काल को नवीन लोकाचार से चिह्नित करते हैं जो पूर्व के कालों से भिन्न था तथा सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से नवाचारी था। *नायक* राज्यों में सृजित विभिन्न प्रकार की साहित्यिक कृतियों जैसे दरबारी साहित्य, नृत्य-नाटिकाओं, प्रशस्ति काव्यों तथा अन्य विधाओं के आधार पर वेल्चेरू नारायण राव, डेविड शुलमैन तथा संजय सुब्रह्मण्यम अपनी कृति में उन क्षेत्रों को प्रदर्शित करते हैं जिनमें परिवर्तन तथा भिन्नता को देखा गया था। उनके अनुसार, इस नवीन लोकाचार की एक मूलभूत विशेषता मुद्रा का बढ़ता हुआ इस्तेमाल था जिसने भूमि आधारित संपत्ति पर प्रमुखता पा ली थी। युद्ध तथा विद्रोह, इन लेखकों के अनुसार, इस तरह की प्रवाहपूर्ण संपत्ति के अधिग्रहण हेतु हुए थे (राव तथा अन्य 1992: 57-110)। कृष्णदेवराय के विरुद्ध मदुरै के नगमा *नायक* का विद्रोह इस संदर्भ में उद्धृत किया गया है (काराशिमा 2014: 228)। इस तरह के लोकाचार का कारण अंतरराष्ट्रीय व्यापार तथा विनिमय के माध्यम से दक्षिण भारत का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ाव होना था। यह वह काल है जब पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा अन्य यूरोपीय कंपनियाँ दक्षिण भारत

की वाणिज्य व्यवस्था में प्रवेश कर चुकी थीं, उन्होंने अपनी फैक्ट्रियाँ स्थापित कीं तथा वे स्थानीय राजनीति में भी दख़लंदाज़ी करने लगी थीं।

अन्य क्षेत्र जिसने नवाचारों का अनुभव किया था, *सिंबल्स ऑफ सब्सटेंस* के मुताबिक, राजा की छवि तथा राजत्व का विचार था। राजा अब एक योद्धा के अतिरिक्त, सौंदर्यबोध से संपन्न व्यक्ति, बुद्धिमान, एक संवेदनशील *नायक*, एक अच्छा प्रेमी जो जीवन का सुख-भोग करता था तथा कई कलाओं में निपुण था, से पृथक नहीं था। अतः राजा के निजी गुणों को उच्च स्थान दिया जाता था तथा ये तीन लेखक, उदाहरण के लिए, विश्वनाथ *नायक* के व्यक्तित्व को उद्धृत करते हुए इस नई छवि को दर्शाते हैं (राव तथा अन्य 1992: 57-72; 169-80)। इसी प्रकार जाति, वंश तथा पद-स्थिति, सामाजिक ब्राह्मणीय श्रेष्ठता पर आधारित नहीं रह गए थे। लेखकों ने साहित्य ग्रंथों से लिए गए उदाहरणों के माध्यम से प्रदर्शित किया है कि क्षत्रियता के दर्ज़े को महत्व देने के बजाय *नायकों* के शूद्र उद्भव को स्थान दिया गया, इसे सामाजिक गौरव प्रदान किया गया और राजा के दर्जे को प्राप्त करने हेतु एक महत्वपूर्ण कारक माना गया और इस प्रकार इसने शास्त्रीय संस्कृत *वर्ण* योजना को उलट दिया था (राव तथा अन्य 1992: 13)। वास्तव में, 'आततायी दस्यु जातियों', मनोहारी राज-गणिकाओं, कपटी वैद्यों, म्लेच्छ व्यापारियों, दक्खनी सिपाहियों, एक बिल्कुल ही 'नए प्रकार के' स्थानीय छोटे राजाओं और 'वतन क्षेत्र तथा युद्ध में अपने नायकत्वपूर्ण लोकाचार के साथ बालिजा अभिजात्यों' के यथार्थपरक चित्रण के साथ सांस्कृतिक सामाजिक भू-दृश्य का विस्तार हुआ था...' (राव तथा अन्य 1992: 12)।

ऐंद्रिक आनंद, भोजन, संपत्ति, नृत्य तथा संगीत का उपभोग इस काल का प्रभावी भाव बन गया। धन तथा योद्धा *नायक* के निजी गुणों को अधिक महत्व दिया गया, जो इससे पूर्व नहीं होता था। इस तरह की प्रभावी भावना, वेल्चेरू नारायण राव, डेविड शुलमैन तथा संजय सुब्रह्मण्यम के मुताबिक़, जिसका *नायक* साहित्य में वर्णन है, सम्भवतः पहले के काल में उत्तरी क्षेत्रों से तेलुगु योद्धाओं के आप्रवासन तथा तदनंतर तमिल तथा कन्नड़ परिवेश से होने वाले उनके अन्तर-संवाद से जन्मी थी (राव तथा अन्य 1992: 27-56)।

सांस्कृतिक रूप से, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, यह साहित्यिक विकास का महान् काल था। *नायकों* के दरबार में साहित्य की विभिन्न विधाओं का विकास हुआ, जो स्वयं भी इनमें से कुछ रचनाओं के रचयिता थे। इनमें से कई रचनाएँ अभिनय की विषयवस्तु बनीं, जिसे *नायकों* ने सक्रिय रूप से संरक्षण प्रदान किया। 'नई प्रकार की साहित्यिक परंपराओं का विकास हुआ जैसे लघु गीतात्मक *पदम* जिसे गाया तथा अभिनीत, दोनों किया जाता था तथा संगीत-नाटक के रूप में रूप में *यक्षगान*, जिसने कर्नाटक तथा आंध्र के जुड़े क्षेत्रों से साहित्य तथा रंगमंच की परंपराओं से ग्रहण किया था' (पीटरसन 2011: 291)। वस्तुतः, *यक्षगान* के ग्रंथ शास्त्रीय तेलुगु परंपरा से प्रभावित थे और कई दरबारी नाट्य-प्रस्तुतियों का विषय थे। वास्तव में, तेलुगु साहित्य सृजन की एक महत्वपूर्ण भाषा बन गई थी।

इस प्रकार एक नवीन लोकाचार का जन्म हुआ, जिसने सांस्कृतिक सृजनात्मकता के लिए नया स्थान उपलब्ध कराया (पीटरसन 2011: 28, 50-90; राव तथा अन्य 1992)। इस प्रकार के लोकाचार को तंजावुर तथा मदुरई के *नायकों* के दरबार में भली-भांति कलमबद्ध किया गया है। रघुनाथ *नायक* (1600-34 सी ई) तथा उसके पुत्र विजयराघव (1634-73 सी ई) ने न केवल कई प्रकार के साहित्य को संरक्षण प्रदान किया बल्कि उन्होंने तेलुगु तथा संस्कृत में दरबारी काव्य की रचना भी की। उनके मंत्रियों, रानियों तथा राज-गणिकाओं ने भी तेलुगु तथा संस्कृत में रचनाएँ कीं (पीटरसन 2011: 291)। सत्रहवीं शताब्दी में, विशेषकर इन दो *नायक* शासकों के अधीन तंजावुर नृत्य तथा संगीत का केंद्र बन गया, तदनंतर मराठों के आक्रमण ने तंजावुर की सार्वदेशिकता तथा बहुभाषिकता में आगे और योगदान दिया (राव तथा अन्य 1992)।

7.12 *नायक* राज्यों का पतन

बीजापुर तथा गोलकुंडा की सल्तनतों के बारम्बार होने वाले आक्रमण विभिन्न *नायक* राज्यों के लिए घातक साबित हुए। सेंजी में *नायक* शासन वस्तुतः 1650 सी ई में बीजापुर के हाथों पराजय के बाद अपने अंत को प्राप्त हुआ। लेकिन, तंजावुर, मदुरै, मैसूर तथा इक्केरी के *नायकों* ने कुछ समय तक अपना अस्तित्व बचाए रखा। अंततः, 1676 सी ई में बीजापुर सल्तनत ने तंजावुर पर आक्रमण किया

और विजय पाई, जिसने यहाँ भी *नायक* शासन का अंत कर दिया। वेंकोजी (एकोजी) नामक एक मराठा सेनानायक बीजापुर की सेना का नेतृत्व कर रहा था, वह शिवाजी का सौतेला भाई था तथा तंजावुर की राजगद्दी पर एक बालक राजकुमार को स्थापित कर बीजापुर के अपने अधिस्वामियों की आज्ञा का पालन कर रहा था। कुछ समय बाद वेंकोजी ने स्वयं की स्वतंत्रता घोषित की और तंजावुर में मराठा शासन की स्थापना की। 1855 सी ई तक मराठा-भोंसले वंश यहाँ शासन करता रहा जबकि ब्रिटिश सत्ता की 'हड़प नीति' (Doctrine of Lapse) के तहत इसका विलय कर लिया गया (राव तथा अन्य 1992: 314)। मदुरै के *नायकों* की राजव्यवस्था का अंत 1732 सी ई में तब हुआ जब आर्कोट के नवाब ने इस पर कब्जा कर लिया। इक्केरी की राजव्यवस्था पर हैदर अली ने अधिकार कर लिया और 1763 सी ई में इसे मैसूर में मिला दिया (काराशिमा 2014: 228)।

नायक शासक परस्पर युद्धरत रहते थे, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इनमें से प्रत्येक राज्य स्वयं में पृथक था और अपनी अलग पहचान रखता था, अपनी विशिष्ट भाषा, दरबारी संस्कृति, राजनीतिक गतिशीलता, तथा क्षेत्रीय घटक धारण करता था। इक्केरी के *नायकों* का मैसूर के ओडयार राजाओं तथा बीजापुर के सुल्तान के साथ प्रतिरोधी संबंध था। उनकी उत्तरी कनारा क्षेत्र में गेरसोप्पा के समृद्ध क्षेत्र पर नियंत्रण प्राप्त करने की इच्छा थी, जहाँ काली मिर्च का समृद्ध उत्पादन होता था और इसके कारण इस क्षेत्र की रानी के साथ अक्सर युद्ध होता रहता था।

अठारहवीं शताब्दी तक *नायक* राजव्यवस्थाएँ विलुप्त हो गई थीं और हैदराबाद के निजाम तथा आर्कोट के नवाब की सहायता से मुग़ल शासन दक्षिण में फैल रहा था। नवाब, मराठा, मैसूर तथा पॉलीगार अब राजनीतिक रूप से शक्तिशाली थे और दक्षिण की राजनीति पर नियंत्रण रखते थे। जैसा कि कर्नाटक और मैसूर युद्ध में एक दूसरों के साथ उनके समझौतों से साक्ष्य मिलता है। इस दृश्य पटल पर अंग्रेजों के प्रवेश ने राजनीतिक गतिशीलता को और भी जटिल बना दिया था।

बोध प्रश्न-4

1) किस प्रकार व्यापार ने *नायक* अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान दिया था?

.....

.....

.....

2) *नायक*-राज्यों में *इज़ारा*-प्रथा के विषय में संक्षेप में चर्चा कीजिए?

.....

.....

.....

3) *नायक* काल के सांस्कृतिक विकास की किन्ही दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

4) *नायक* काल को नवीन लोकाचार के युग के रूप में चित्रित करने के पीछे तीन कारण बताइए।

.....

.....

.....

7.13 सारांश

इस इकाई में मदुरै, सेंजी तथा तंजावुर पर विशेष ध्यान देते हुए *नायक* राज्यों की मुख्य विशेषताओं पर चर्चा की गई है। इतिहासलेखन में सामान्यतः सोलहवीं से अंतिम सत्रहवी शताब्दी तक के इस काल को अनदेखा किया गया है, जबकि विजयनगर साम्राज्य कमज़ोर पड़ चुका था और इसकी राजधानी खंडहरों में तब्दील हो गई थी। ब्रिटिश शासन से पूर्व के इन वर्षों पर हाल के समय में दक्षिण भारत पर किए गए शोध विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण हो गए हैं। *नायकों* का तेलुगु मूल तथा उत्तरी आंध्र

क्षेत्र से जो अनुभव वे अपने साथ लेकर आए थे, उसने विजयनगर साम्राज्य की अर्थव्यवस्था, राजव्यवस्था और संस्कृति को आकार प्रदान किया। जहाँ इन तेलुगु योद्धा समूहों को विजयनगर प्रशासन में *नायक* अधिकारियों के रूप में आत्मसात कर लिया गया और प्रशासन के लिए अधिक्षेत्र प्रदान किए गए, ये क्रमिक रूप से शक्तिशाली होते गए और इन्होंने नए राज्यों के साथ स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर लिया। ये *नायक*-राज्य नए राजनीतिक व्यवहारों, पुरातन से भिन्न सत्ता की विचारधाराओं, बदल चुके सामाजिक अभिमूल्यों, रूपांतरित राजनीतिक अर्थव्यवस्था और सांस्कृतिक परिवेश के केंद्र बन गए। ये सभी विशेषताएँ इस काल के नवीन लोकाचारों की पहचान-चिह्न बन गईं तथा इन्होंने दक्षिण भारत में ऐतिहासिक विकासक्रम के लिए एक संदर्भ उपलब्ध कराया।

7.14 शब्दावली

अराविडु 1570-1646 के मध्य शासन करने वाला विजयनगर का राजवंश

तालीकोटा का युद्ध तालीकोटा का युद्ध विजयनगर शासक अलिया राम राय और दक्खनी सल्तनतों की संयुक्त सेनाओं के मध्य 1565 में लड़ा गया था। इस युद्ध में अंततः विजयनगर शासक की हार हुई और दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य की शक्ति का पतन हो गया

नायकट्टाना अपने सैनिकों के रखरखाव के लिए *नायकों* को दिए गए भू-अनुदान

ओडयार 1399-1950 के मध्य मैसूर-राज्य पर शासन करने वाला राजवंश। वे विजयनगर शासकों के सामंत थे। बाद में, विजयनगर की शक्ति के पतन के बाद ओडयारों को श्रीरंगपट्टनम् पर आधिपत्य स्थापित करने का मौका मिला और 1610 में उन्होंने अपने आप को विजयनगर के अधीनत्व से स्वतंत्रता की घोषणा कर दी

पारवा मदुरै क्षेत्र का स्थानीय मत्स्य पालन समुदाय

सीमा, सीमे, सिमई *नायकों* को प्रदत्त भू-अनुदान

वडुगा 14-15वीं शताब्दियों में आंध क्षेत्र के आप्रवासी तेलुगु *नायक* जो कन्नड़ और तमिल क्षेत्रों में जाकर बस गए

यक्षगणा संगीतमय नाट्य विधा

7.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 7.2, 7.3

2) i-e; ii-a; iii-d; iv-b; v-c

3) i-x; ii-x; iii-✓; iv-x

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 7.4

2) देखें भाग 7.6

3) देखें उप-भाग 7.4.3

4) देखें भाग 7.5

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 7.8

2) देखें उप-भाग 7.8.3

3) (घ)

4) (घ)

बोध प्रश्न-4

1) देखें भाग 7.9

2) देखें भाग 7.9

3) देखें भाग 7.10

4) देखें भाग 7.11

7.16 संदर्भ ग्रंथ

अय्यर, आर. सत्यनाथ, (1924) *हिस्ट्री ऑफ़ नायकाज़ ऑफ़ मदुरा* (मद्रासः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) (पुनर्प्रकाशित).

डर्क्स, निकोलस, बी., (1987) *दि हॉलो क्राउनः एथनोहिस्ट्री ऑफ़ एन इंडियन किंगडम* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

काराशिमा, नोबोरू, (1994) *टुवॅर्ड्ज़ अ न्यू फ़ॉर्मेशनः साउथ इंडियन सोसायटी अंडर विजयनगर रूल* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

काराशिमा, नोबोरू, (2014) *अ कंसाइज़ हिस्ट्री ऑफ़ साउथ इंडियाः इशूज़ एंड इंटरप्रेटेशन्स* (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

पीटरसन, इंदिरा विश्वनाथन, (2011) 'मल्टीलिंग्वल ड्रामाज़ ऐट द तंजावुर मराठा कोर्ट एंड लिटरेरी कल्चर्स इन अर्ली मॉडर्न साउथ इंडिया', *मिडीवल हिस्ट्री जर्नल*, 14, 2: 285-321.

राव, वेल्चेरू नारायण, संजय सुब्रह्मण्यम, तथा डेविड डीन शुलमैन, (1992) *सिंबल्स ऑफ़ सब्स्टेन्सः कोर्ट एंड स्टेट इन नायक पीरियड इन तमिलनाडु* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

श्रीनिवासाचारी, राव बहादुर सी. एस., (1943) *अ हिस्ट्री ऑफ़ जिंजी एंड इट्स रूलर्ज़* (अन्नामलाइनगरः द यूनिवर्सिटी प्रेस).

सुब्रह्मण्यम, संजय (2001) *पेनुंबरल विज़ंसः मेकिंग पॉलिटीज़ इन अर्ली मॉडर्न साउथ इंडिया* (एन आर्बरः यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगन प्रेस).

स्वामीनाथन, के. डी., (1967) *दि नायकाज़ ऑफ़ इक्केरी* (मद्रासः पी. वर्दाचारी एंड कं.).

स्टाइन, बर्टन, (1989) *विजयनगरः द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

वृद्धगिरीसन, वी., (2011 [पुनःमुद्रित]), *दि नायकाज़ ऑफ़ तंजौर,* राव बहादुर प्रोफ़ेसर सी. एस. श्रीनिवासाचारी द्वारा परिचय तथा पूरक नोट्स के साथ सम्पादित (नई दिल्लीः एशियन एडुकेशनल सर्विस [1942, 1995, अन्नामलाई हिस्टॉरिकल सीरीज़, नं. 3, यूनिवर्सिटी ऑफ़ अन्नामलाई, अन्नामलाईनगर]).

वैगनर, फ़िलिप बी., (1993) *टाइडिंग्ज़ ऑफ़ द किंग्ज़ः अ ट्रांसलेशन एंड एथनोहिस्टॉरिकल अनालिसिस ऑफ़ द रायवाचकमु* (होनोलूलूः यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई प्रेस).

7.17 शैक्षणिक वीडियो

तिरुमलाई नायकर हिस्ट्री इन इंग्लिश
https;//www.youtube.com/watch?v=QOzuMShsQe4

मुदरै नायक डायनैस्टी
https://www.youtube.com/watch?v=89XKif7Z4po&t=2s

द नायकाज़ ऑफ चित्रदुर्ग
https://www.youtube.com/watch?v=CDEvXEbFyb4

द नायकाज़ ऑफ केलाडी
https://www.youtube.com/watch?v=cweIidKR&qM

तंजावुर नायक किंगडम
https://www.youtube.com/watch?v=4iCiLjZOuPY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY